आई.एस.आई.एस.

इतिहास, विकास और समकालीन चुनौती

2nd Cover
Blank

आई.एस.आई.एस.

इतिहास, विकास और समकालीन चुनौती

आई.एस.आई.एस.

इतिहास, विकास और समकालीन चुनौती

लेखक

मनमोहन शर्मा

सीनियर फेलो, भारत नीति प्रतिष्ठान

संपादक मंडल

डॉ. शारदेन्दु मुखर्जी

सदस्य, आई.सी.एच.आर.

विनोद शुक्ल

वरिष्ठ पत्रकार

जगन्निवास अय्यर

शोधार्थी

॥ प्रदीपयेम जगत् सर्वम् ॥

भारत नीति प्रतिष्ठान

India Policy Foundation

प्रतिष्ठान की नीति के तहत हम इस पुस्तक की विषयवस्तु के संदर्भ सहित पूर्ण या आंशिक प्रयोग को प्रोत्साहित करते हैं।

प्रकाशक :

भारत नीति प्रतिष्ठान

डी—51, हौज खास, नई दिल्ली—110016 (भारत)

दूरभाष : 011—26524018

फैक्स : 011—46089365

ई—मेल : indiapolicy@gmail.com

वेबसाइट : www.indiapolicyfoundation.org

संस्करण : प्रथम, मार्च, 2015

© भारत नीति प्रतिष्ठान

ISBN: 978-93-84835-03-3

मूल्य : 150 रुपये मात्र

मुद्रक :

मानसी प्रिंटर्स

पॉकेट बी—35डी, दिलशाद गार्डन,

दिल्ली—110095

ई—मेल : maanseeprinters@yahoo.co.in

अनुक्रम

- प्राक्कथन i

1. भारत में खिलाफत आंदोलन (1919–1924) 1
2. नई खिलाफत और भारत 39
3. नई खिलाफत का दर्शन 51
4. खिलाफत का रक्त–रंजित इतिहास 65
5. इस्लामी जगत में विभाजन 81
6. कौन हैं ये यजीदी? 91
7. नई खिलाफत और अरब जगत 99
8. भारत में अलकायदा के बढ़ते कदम 105

प्राक्कथन

'धार्मिक' चेतना कब और क्यों उन्मादी और हिंसक बन जाती है यह प्रश्न सिर्फ आज ही प्रासंगिक है ऐसा नहीं है। यह कल भी प्रासंगिक था। परंतु 'धार्मिक' साम्राज्यवाद ने इस प्रश्न पर खुलकर स्वतंत्र मन और आलोचनात्मक भाव से विमर्श को पनपने नहीं दिया। धर्म का अर्थ क्या है? इस प्रश्न को इतना ओझल कर दिया गया कि विभिन्न धर्मों में अन्तर्निहित खामियों पर वाद–विवाद धार्मिक सत्तावाद के प्रभाव में दबकर रह गया। यह धार्मिक सत्तावाद धर्म के वाह्य आचरण और पहचान के प्रसार का है। जब ईश्वर के उपासक अपने आपको ईश्वर का दूत मानकर काम करना शुरू कर देते हैं तो उनका लक्ष्य अपनी आधारभूमि को बढ़ाना हो जाता है और यहीं से विवाद का विमर्श शुरू हो जाता है। ईश्वर की साधना, उसकी प्राप्ति और उस तक पहुंचने का मार्ग यदि परिभाषित कर दिया जाता है और परिभाषा को अपरिवर्तनीय बना दिया जाता है तो स्वाभाविक रूप से यह कट्टरता की उर्वरा भूमि बन जाती है। इसी कारण दुनिया ने एक शताब्दी से भी अधिक समय तक 'रिलिजियस वार' देखा है। जिसका आधार एक दूसरे पर प्रभुत्व स्थापित करना था। इस प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा में धर्म का मूल मर्म लुप्त हो गया। कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट का हिंसात्मक और सत्तावाद को लेकर चलने वाला संघर्ष, इस्लाम एवं ईसाई के बीच वर्चस्व की लड़ाई एवं इस्लाम के भीतर शिया–सुन्नी के बीच ईर्ष्या जनित वैमनस्य के अनेक उदाहरण हैं। ऐसे में तीसरा वैकल्पिक पक्ष हिन्दू सभ्यता से निकलता है जिसमें धर्म का अर्थ मानव को अपने ब्रह्मांड से जुड़ने, अपने और ब्रह्मांड के बीच के संबंध की व्याख्या करने के साथ–साथ पुरानी व्याख्या और परिभाषा का निषेध प्राकृतिक अधिकार माना गया है। अतः हिन्दू दर्शन में वैविध्य एवं विभिन्नता को आध्यात्म के प्रगतिशील विकास का आधार माना गया है। तभी तो भूत के आध्यात्म, आध्यात्मिक चेतना और आध्यात्मिक नायक द्वारा वर्तमान और भविष्य की संभावनाओं पर प्रश्न तो नहीं ही खड़ा होता है। इसके विपरीत उन संभावनाओं की वे स्वयं ही आधारभूमि बन जाते हैं। यही विशेषता हिन्दू धर्म को प्रवाहमान, गतिमान, परिवर्तनशील और प्रयोगधर्मी बना देती है। धर्म की यह व्याख्या 'रिलिजन' की व्याख्या

से भिन्न है। इसी रिलिजन को धर्मसत्तावादियों ने भारतीय वैश्विक दृष्टि में थोपने की कोशिश की जो शब्द और शब्दों के अर्थों में भ्रम का कारण बना। इस भ्रम से विमर्श के मार्फत निकलने की आवश्यकता है। 'सर्व धर्म समभाव' राजनीतिक नारा बन गया है। इसके कारण इसका दार्शनिक पक्ष ओझल हो गया है। 'धर्म समभाव' का अर्थ सभी मार्गों को आलोचनात्मक भाव (Critical Perspective) से देखना और आलोचनात्मक बराबरी (Critical Equality) का स्थान देना है। जो दर्शन, 'धर्म' अपने आपको कठोरता से आलोचनात्मक दायरे से अलग रखता है, सत्तावादी और प्रसारवादी चरित्र को आध्यात्म की प्रगति मानता है वह 'सर्व धर्म समभाव' का निषेध करता है।

आज दुनिया ऐसे ही निषेधात्मक ताकतों का सामना कर रही है। आई.एस.आई.एस. का उभार सिर्फ आतंकावाद के प्रति हमें सोचने के लिए बाध्य नहीं करता है बल्कि आतंकवाद के पनपने में 'धर्मों' के योगदान के बारे में भी गहराई से विमर्श करने के लिए बाध्य करता है। आई.एस.आई.एस. उस प्रवृत्ति का परिणाम है जो प्रयोगधर्मी मानव के विवेक और स्वतंत्रता की चौकीदारी करता है, उस पर ताला लगा देता है। अतः आई.एस.आई.एस. से तो बंदूकों से लड़ा जा सकता है परंतु इसकी जड़ में मट्ठा डालने के लिए धर्म के मूल अर्थ को समझने, समझाने की आवश्यकता है।

भारत नीति प्रतिष्ठान ने आई.एस.आई.एस. के उदभव, उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसके आसन्न खतरों को केन्द्र में रखते हुए यह हस्तक्षेप पत्र तैयार किया है। इसके तर्कों एवं तथ्यों से अनेक असहमतियां हो सकती हैं। इस हस्तक्षेप पत्र का उद्देश्य सकारात्मक आलोचनात्मक विमर्श है। सहमति, असहमति के बीच ही विमर्श आगे बढ़ सकता है।

– **प्रो. राकेश सिन्हा**
मानद निदेशक,
भारत नीति प्रतिष्ठान

8 मार्च, 2015

1 भारत में खिलाफत आंदोलन (1919-1924)

आज संसार के सामने आई.एस.आई.एस. के कारण संकट उत्पन्न हो गया। यह मानवीय सभ्यता और जीवन मूल्यों के लिए अस्तित्व के संकट से कम नहीं है। आई.एस.आई.एस. ने पश्चिम एशिया में इराक और सीरिया के जिन इलाकों को बलात अपने अधीन कर रखा है, वहां एक इस्लामी खिलाफत कायम होने की घोषणा कर चुका है।

खिलाफत के इस ऐलान से अनेकों प्रश्न खड़े हुए हैं, भारत ही नहीं वरन विश्व के लिए आई.एस.आई.एस. एक गम्भीर चुनौती बन गया है। इसको समझने और इससे निपटने के लिए सम्भावित रणनीति बनाने में विश्व समर्थ हो सके। इससे बहुत कुछ समझना आवश्यक है। सच ही कहा गया है कि जो इतिहास से सीखते नहीं हैं, वे उसे दोहराने के लिए अभिशप्त होते हैं।

स्पष्ट है कि इस्लामी खिलाफत की बहाली के लिए चल रहे जिहाद से सभ्य विश्व और विशेषकर भारत पर काफी प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। इससे पूरे विश्व में भय और तीव्र जुगुप्सा फैली है। खिलाफत का अर्थ है शरिया की हुकूमत, 'अविश्वास करने वालों' और इस्लाम कुबूल करने से इनकार करने वालों बहुदेव–उपासकों और काफिरों का धर्मान्तरण और जहां ऐसा न हो सके, उनका निर्मम कत्ल। वर्तमान में हम स्पष्ट देख रहे हैं कि सीरिया और इराक में यजीदियों, शिया मुसलमानों और ईसाइयों पर कैसा अमानवीय कहर टूट पड़ा है। विश्व के अन्य हिस्सों में भी 'काफिरों' के साथ ऐसा ही खतरा मंडरा रहा है।

लन्दन से प्रकाशित होने वाली पत्रिका *इकॉनॉमिस्ट* इस घटनाक्रम को इस प्रकार वर्णित करती है, 'आज इराक और सीरिया को देश भी कहना कठिन है। इस सप्ताह जिहादियों की एक बार्बर टोली ने उनकी सीमाओं को बेमानी करार दिया और उनके स्थान पर एक नए खिलाफत का ऐलान किया, जो अपने में इराक और बृहत्तर सीरिया

(इजरायल, फिलिस्तीन, लेबनन, जॉर्डन और तुर्की के कुछ अंशो को सम्मिलित किए हुए) को समाविष्ट करेगा – और बाद में पूरे विश्व को। खिलाफत के सरगना सभी गैर–मुसलमानों का कत्ल करना चाहते हैं, न केवल मध्य पूर्व में, बल्कि न्यूयॉर्क, लन्दन और पैरिस की सड़कों पर भी।'[1] *इकॉनॉमिस्ट* के इस विवरण में एक गम्भीर खामी है। इसमें भारत को शामिल नहीं किया गया है, जबकि भारत शताब्दियों से आतंकवाद का शिकार रहा है।

अमेरिका से निकलने वाले समाचारों के अनुसार वहां की सरकार का अनुमान है कि आई.एस.आई.एस. को नष्ट करने के लिए तीन वर्ष लग सकते हैं। इस निश्चयात्मकता का आधार अभी स्पष्ट नहीं हो पाया है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि इस प्रकार की बयानबाजी से विश्व पर अपना वर्चस्व स्थापित करने और 'दूसरों' के संहार के लिए कटिबद्ध पैन–इस्लामी ताकतों का मनोबल बढ़ेगा अथवा उसके शिकार हो रहे लोगों को राहत मिलेगी। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि हाल के घटनाक्रमों ने पूरे विश्व में आशंकाएं फैला दी है। राष्ट्रपति ओबामा के इस वक्तव्य, कि अमेरिका आई.एस.आई.एस. का 'क्षय कर उसका विनाश करेगा' की विश्वसनीयता अभी अनिश्चित बनी हुई है क्योंकि इस्लामी आतंकवादी विचारधारा और उसके तन्त्र को लेकर अमेरिका की नीति का अभी ठीक से पता नहीं है।[2] आई.एस.आई.एस. को लेकर अमेरिका के रवैये के प्रति विश्व का अविश्वास कायम है। विश्व मामलों में अब आदर्शवादियों के लिए कोई स्थान नहीं है।

एंग्लो–अमेरिकी गुट के वास्तविक उद्देश्यों को लेकर सन्देह के मूल को रेखांकित करने के लिए अतीत पर एक दृष्टि डालना काफी उपयोगी होगा, विशेषकर पहले के खिलाफत आन्दोलन और उसके प्रति तब के ब्रिटिश हुकूमत के रवैये पर।

अब से पहले खिलाफत कायम की गई थी तुर्की ओटोमन साम्राज्य के दौरान। लन्दन के समाचार–पत्र *द न्यू स्टेट्समैन* ने बहुत वर्ष पहले अपने पाठकों को याद दिलाया कि 1916 के साइक्स–पिकॉट समझौते की समाप्ति पर उस खिलाफत को पुनः स्थापित करने की हलचलें तेज हुईं थी, जिसका अन्त तुर्की के महान सुधारवादी और आधुनिक नेता मुस्तफा कमाल अतातुर्क ने ओटोमन साम्राज्य के 1924 में औपचारिक पतन के पश्चात किया था। *द न्यू स्टेट्समैन* ने आगे यह बताया कि 'प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व ही', जिसमें ओटोमन साम्राज्य ने जर्मनी का साथ दिया था, ब्रिटिश विदेश सेवा के अनेक अधिकारी (विशेषकर उसके काहिरा ब्यूरो के अरबी जानने वाले अधिकारीगण) एक ऐसे गैर–ओटोमन अरब नेतृत्व वाली खिलाफत की स्थापना को लेकर गम्भीरता से विचार कर रहे थे, जो मक्का में स्थित हो। इस तरह की योजना का प्रायोजक

बनकर ब्रिटेन इस क्षेत्र में अपने हितों के संरक्षण की सोच रहा था, जिसमें स्वेज नहर से अबाधित मार्ग और उभर रहे तेल बाजारों तक पहुंच शामिल थे।[3]

इसी के समानान्तर एक और विचार–पद्धति सक्रिय थी। सन् 1920 के दशक पर दृष्टि डालें, तो पता चलता है कि लन्दन के समाचार–पत्र *द डेली मेल* ने 17 जनवरी, 1922 के एक लेख में इस बात पर जोर दिया था कि खिलाफत और तुर्की के प्रति ब्रिटिश नीतियों के कारण उद्विग्न भारत के मुसलमानों को संतुष्ट करना जरूरी है। पूर्व के हमारे मुस्लिम नागरिकों को रुष्ट करने का आखिर कोई कारण नहीं है, इस लेख ने कहा। इससे यह भी पता चलता है कि ब्रिटिश खिलाफत के उतने तीव्र विरोधी नहीं थे जैसा तुर्की के महान सुधारवादी नायक मुस्तफा कमाल थे।[4] *द डेली मेल* ने एक बार फिर (15 फरवरी, 1922 के अपने संस्करण में) ब्रिटेन की ढुलमुल नीति को समाप्त करने और मध्य पूर्व में ब्रिटिश हितों के 'दृढ़ हाथों' से संरक्षण पर जोर दिया। इस सम्बन्ध में अखबार ने विशेष रूप से कहा कि 'भारत में मुस्लिम विरोध' का शमन करने के लिए खिलाफत के मसले का समाधान ढूंढ लिया जाना चाहिए।[5]

आज के संसार में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। परन्तु देशों के भू–राजनीतिक हित और उन हितों के संरक्षण को लेकर की जाने वाली राजनीति नहीं बदली है। इस तरह की राजनीति से विश्व समुदाय के लिए जो खतरे उत्पन्न होते हैं, उनके शमन के लिए विभिन्न देशों के विदेश विभागों में क्या कोई कारगर उपाय–योजनाएं बन रही हैं या नहीं, यह तो समय ही बताएगा।[6] किन्तु यह एक निर्विवाद सत्य है कि आतंकवाद को बढ़ावा न केवल आतंकवाद–प्रोत्साहक राज्य देते रहे हैं, बल्कि विश्व के अनेक लोकतान्त्रिक देश भी ऐसा करते रहे हैं। इस्लामिक आतंकवाद रूपी अनेक सिरों वाले इस दानव को कई लोकतान्त्रिक देशों ने अपने फायदे के लिए पाला और पोसा है, भले ही उसमें भारत को कितना ही नुकसान क्यों न उठाना पड़ा हो। साथ ही, भारत में भी अनेक ऐसे वर्ग हैं जो स्वयं को 'धर्मनिरपेक्ष' और 'प्रगतिशील' बताते हुए इस्लामी आतंकवाद के साफ दिखाई देने वाले कुकृत्यों पर आंखें मूंदकर शताब्दियों से चली आ रही इस अमानवीय त्रासदी की परोक्ष रूप से सहायता कर रहे हैं। यह भारत की अपनी समस्या है, जिसका सामना विश्व के अन्य देशों को नहीं करना पड़ रहा है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : भारत में परिदृश्य

यह आलेख पहले के खिलाफत आन्दोलन (1919–1924) से भारत के अनुभव पर केन्द्रित है। इसमें उन मजहबी और राजनीतिक कारणों को समझने का प्रयास किया जाएगा, जिससे लोग उस आन्दोलन के प्रति आकृष्ट हुए थे। साथ ही उसके विभिन्न

आयामों, भारत के राजनीतिक नेताओं और विचारकों द्वारा अपनाए गए रवैये और आज की तारीख में आई.एस.आई.एस. और उससे सहानुभूति रखने वाले विभिन्न नाम धारण करने वालों की ओर से उत्पन्न चुनौती के मद्देनजर सौ साल पहले के खिलाफत आन्दोलन को समझने का प्रयास किया जाएगा, ताकि विश्व इस समस्या को अपनी पूर्णता में समझने में सक्षम हो, और उससे निपटने के लिए उचित रणनीति भी बना सके। सच ही कहा गया है कि जो इतिहास से सीखते नहीं हैं, उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

यहां पर एक तथ्य पर हमें ध्यान देना होगा। मुस्लिम देशों अथवा मुसलमान–बहुल देशों में होने वाले अधिकांश मजहबी और राजनीतिक हलचलों की पुनरावृत्ति भारत में प्रायरू होती है। अतः इस प्रवृत्ति की सामाजिक और राजनीतिक समझ आवश्यक है।

(स्वर्गीय) नीरदचन्द्र चौधरी ने इस हेतु एक अत्यन्त ही उपयुक्त सुझाव दिया है। नीरद चौधरी का कहना है, 'कई इतिहासकार भारतीय इतिहास के इस्लामी कालखण्ड को भारत में एक स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में देखने के आदी हो चुके है, मानो उस पर इस्लाम का सिर्फ एक मुलम्मा चढ़ा हुआ हो। यह दृष्टिकोण पूरी तरह गलत है। भारत पर अपनी हुकूमत की सम्पूर्ण अवधि के दौरान यहां रहने वाले मुसलमान अपने आप को इस्लामी जगत के एक अभिन्न अंग के रूप में ही देखते थी और अपने 'पितृ–समुदाय' से अपने सम्बन्ध बनाए रखने का पूरा प्रयास करते थे।'[7]

चौधरी का इस सम्बन्ध में आगे कहना है, 'भारत में इस्लामी अभियान की प्रकृति ने ही भारत में रह रहे मुसलमानों का बृहत्तर इस्लामी जगत से घनिष्ठ सम्बन्ध को स्वाभाविक बनाया। दूसरे शब्दों में, भारत इस्लाम का एक औपनिवेशिक साम्राज्य था।'[8] प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक वी.एस. नायपॉल के प्रमुख लेखो–निबन्धों में भी हमें इस्लामी जगत से इस तरह की मानसिकता और व्यवहार के अनेकों उदाहरण मिलेंगे।[9]

शताब्दियों से भारत इस्लामी आक्रमण का शिकार रहा है। मुस्लिम शासकों ने न केवल यहां हुकूमत की है बल्कि इस भूमि को बुरी तरह रौंदा भी है। इतना ही नहीं, 1947 में मजहब के नाम पर इस देश का विभाजन किया गया। मामला वहीं रुका नहीं बल्कि 1947 के पश्चात् देश पर वोट बैंक की गुलामी करने वाला एक राजनीतिक तन्त्र हावी रहा है और भारत को इस्लामी आतंकवाद के न रुकने वाले कहर का सामना करना पड़ रहा है। अतः एक इस्लामी खिलाफत के क्या मायने हैं, इसके बारे में भारत से बेहतर कौन जान सकता है। बल्कि स्वतन्त्रता आन्दोलन और गांधी की 'धर्मनिरपेक्ष' छवि के चलते भी भारत को अपनी भूमि पर एक खिलाफत आन्दोलन झेलना पड़ा था।

विचारधारात्मक शृंखलाएं और पैन–इस्लामी विरासत

इराक, सीरिया और इस्लामी जगत में अन्य ठिकानों पर वर्तमान उथल–पुथल को ठीक से समझने और उन्हें उत्प्रेरित कर रहे विचारों के पुनः उदय में निहित खतरों को लेकर जागरूकता उत्पन्न करने के लिए हमें बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में खिलाफत आन्दोलन के मूल और उसकी प्रकृति का अध्ययन करना होगा। यह देखना जरूरी है कि किस तरह ओटोमन साम्राज्य में खिलाफत की बहाली के लिए चली मुहिम ने भारत के खिलाफत आन्दोलन को प्रेरित किया। लेकिन इसे समग्र रूप से समझने के लिए भारत की भूमि पर पैन–इस्लामी विचारों के आगमन और प्रसार का भी जायजा लेना होगा। यहां पर हमें सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय के विचारों या अल अफगानी के भारत आगमन और उसके प्रभावों की सविस्तार जानकारी में जाने की आवश्यकता नहीं है।

बिपिन चन्द्र पाल (1858–1932) उन विचारकों और द्रष्टाओं में से थे, जिन्होंने अपने देशवासियों को 1913 में ही विश्व–व्यापी इस्लामी विस्तारवाद के खतरों के बारे में चेताया था। उन्होंने कहा था, 'इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि पैन–इस्लाम शनैः शनैः सामाजिक और राजनीतिक विकास क्रम में एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कारक बनने जा रहा है, भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व में भी। कहा जा रहा है कि पैन–इस्लामी दुष्प्रचार से भड़काई जानेवाली इस्लामी कट्टरता से इस्लाम की ताकत बढ़ेगी नहीं बल्कि घटेगी। ऐसा यूरोप के अनेक टिप्पणीकारों और राजनेताओं का मानना है। और पैन–इस्लाम को लेकर मेरे अनेक शिक्षित हिन्दू बन्धु भी कुछ ऐसा ही मान बैठे हैं। लेकिन मेरे मतानुसार यह अनुमान पूर्णतः गलत है।'

बिपिन चन्द्र पाल ने आगे भविष्यवाणी की थी, 'यदि पैन–इस्लामवाद आने वाली शताब्दियों में उस भूमिका को दोहराने का स्वप्न देखता हो जो अतीत में इस्लाम ने एशिया, अफ्रीका और यूरोप में निभाई थी, तो घोर निराशा ही उसके भाग्य में है। इतिहास अपने आप को कभी भी इस तरह नहीं दोहराता है। आधुनिक विश्व में इस्लाम अब कभी भी एक अजेय सैन्य शक्ति नहीं बन सकता।'[10]

यहां पर हम औपनिवेशिक युग के एक ब्रिटिश रिपोर्ट पर भी नजर डालेंगे, जिसमें तब के पैन–इस्लाम को लेकर ब्रिटिश अधिकारियों की राय व्यक्त की गई है।

'इस्लामवाद जैसी जटिल परिस्थिति के उत्पन्न होने में अनेक सूक्ष्म प्रवृत्तियों ने योगदान किया है। दो–एक विचारों को पृथक करना जरूरी है ताकि यह समझा जा सके कि कैसे उनके सक्रिय होने से यह परिणाम (याने इस्लामवादी विचारों का प्रसार)

सामने आया है। यह आन्दोलन मजहबी भी है और राजनीतिक भी। उसका मजहबी स्वरूप लगभग वैश्विक है जबकि उसका राजनीतिक स्वरूप यद्यपि व्यापक है, किन्तु भारत और तुर्की से ज्यादा सम्बन्ध रखता है, हालांकि दोनों के उद्देश्य अलग अलग हैं। भारत के मुसलमानों और अन्यत्र रहने वाले मुसलमानों के बीच रिश्ते काफी घनिष्ठ और वास्तविक हैं। त्रिपोली (वर्तमान लिबिया की राजधानी) और फारस (आज का ईरान) में उनके हम–मजहबियों की दुर्दशा से उनका मानस काफी आहत हुआ है। मुसलमान यह सोचते हैं कि ईसाइयों का गठबन्धन इस्लाम की बर्बादी लाएगा जिसे मजहबी आधार पर कायम किए गए एक मुस्लिम गठजोड़ से ही ताला जा सकता है। इस पैन–इस्लामी मुहिम की उत्पत्ति इसी भावना से हुई प्रतीत होती है।'[11]

कुछ प्रारम्भिक तथ्यों पर एक विहंगम दृष्टि

1915 में मोहनदास करमचंद गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट आए थे। उन्होंने चम्पारण सत्याग्रह और अन्य सफल राजनीतिक कार्यक्रमों के माध्यम से भारत की राजनीतिक भूमि में अपने आप को स्थापित किया। देखते देखते 1914 में भड़का प्रथम विश्व युद्ध 1918 में समाप्त हुआ। देश में राजनीतिक आशाएं हिलोरें मारने लगी थीं। इधर गांधी ने यह भी देखा कि भारतीय समाज का एक उल्लेखनीय तबका अपने को मुख्यधारा की राजनीति और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से पृथक रखे हुए था। यह था देश का मुस्लिम समुदाय। कुछ अपवादों को छोड़ मुस्लिम समुदाय कुल–मिलाकर हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति न केवल उदासीनता बल्कि विरोध का भाव रखता था। यह गांधी को काफी अखरा। और मुसलमानों की इसी भावना को किसी भी प्रकार से दूर करने के लिए गांधी ने खिलाफत आन्दोलन को प्रोत्साहन देना शुरू किया।

प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की के ओटोमन (उस्मान) इस्लामी साम्राज्य की मित्र शक्तियों (अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि पश्चिमी देशों का गठबन्धन) के हाथों निर्णायक पराजय हुई। तुर्की का सुल्तान विश्व के मुसलमानों का खलीफा भी था और ओटोमन साम्राज्य इस्लामी खिलाफत का ओहदा और रुतबा दोनों धारण करता था। अब इस विश्व युद्ध में काफिर पाश्चात्य देशों के हाथों ओटोमन साम्राज्य न केवल परास्त हुआ बल्कि उसका अस्तित्व ही भंग हो गया। यह पूरे विश्व के मुसलमानों के लिए अपमान और गहरे सदमे की बात थी। 14 मई 1920 को सेव्रे की सन्धि हुई, जिसके परिणामस्वरूप विश्व का एकमात्र (सुन्नी) मुस्लिम साम्राज्य विश्व के राष्ट्रों के समुदाय में अपमानित और बुरी तरह भग्न होकर रह गया। तुर्की में अब मुस्तफा कमाल पाशा (जो कमाल अतातुर्क के नाम से जाने जाते हैं) का उदय हुआ, जो इस्लामी मजहबी शासन व्यवस्था या उसकी सामाजिक रचना के प्रति जरा भी सहिष्णु नहीं थे। अतातुर्क ने खलीफा का

पद और यहां तक कि खिलाफत को ही समाप्त कर दिया। ओटोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही तुर्की के बादशाह को, जो मुसलमानों का खलीफा भी था, ब्रिटिश संरक्षण में माल्टा भागना पड़ा। अब्दुल माजिद नाम के एक नए खलीफा ने उसकी जगह लेने की कोशिश की, लेकिन कमाल अतातुर्क द्वारा स्थापित नई आधुनिक शासन व्यवस्था में इसके लिए अब कोई स्थान नहीं था।

इस्लामी खिलाफत मुख्यतः एक मजहबी और राजनीतिक विषय है। अतरू उसका मूल खोजना आवश्यक है, और इसका आरम्भ अनेक शताब्दियों के दौरान भारतीय समाज और राजनीति में उलेमाओं की भूमिका की खोज से करना होगा। मुस्लिम उलेमाओं का प्रवेश भारत पर हमला करने वाले मध्य और पश्चिम एशिया के इस्लामी हमलावरों के साथ ही हुआ, लेकिन इस विस्तृत इतिहास में जाने की यहां आवश्यकता नहीं है। वर्तमान सन्दर्भ में इतना जानना पर्याप्त है कि 20वीं शताब्दी की शुरुआत में जहां एक ओर भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन व्योमेशचन्द्र बैनर्जी, दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, बाल गंगाधर तिलक, बिपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, रोमेश चन्द्र दत्त, अरविन्दो घोष, गोपालकृष्ण गोखले आदि दिग्गज राष्ट्रीय नेताओं के नेतृत्व में नई ऊंचाइयां प्राप्त कर रहा था, वहीं इस्लाम के मौलाना–मौलवी भी अपने समुदाय में काफी सक्रिय होने लगे थे।

मुसलमानों का यह विरोध बढ़ने भी लगा था। इस्लामी जगत के बाशिन्दों की परवरिश मजहबी आधार पर होती है, जिसमें मोमिनों और काफिरों, दार–उल–हर्ब और दार–उल–इस्लाम के बीच आदिम किस्म के मजहबी विभाजन को सर्वोपरि महत्व दिया जाता है। इसके साथ ही मुसलमानों में भारत में इस्लाम के शासन की यादें और उसके समाप्त होने की पीड़ा थी (और आज भी है)। इस मानसिकता को और भड़काने के लिए भारत में वहाबी, फरैजी और इस प्रकार के गुट खूब पनपने लगे। गैर–मुस्लिम समुदायों से शत्रुता ही इन गुटों का आधार था और इनकी सक्रियता और बढ़ते प्रभाव से भारत में साम्प्रदायिक मतभेद और वैमनस्य भी बढ़ने लगा था। और इसी पृष्ठभूमि व आधार पर सर सय्यद अहमद खान ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना की। उनके इस कदम ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को एक सर्वथा नए स्तर पर संस्थाबद्ध रूप दिया। फिर 1906 में ढाका (तब वह ब्रिटिश–शासित बंगाल प्रेसिडेन्सी में था) में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। उसी वर्ष मुस्लिम लीग के शिमला शिष्टमण्डल ने पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग की, जिसे ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों ने तुरन्त मान भी ली। इस सारे घटनाक्रम से स्पष्ट था कि मुस्लिम अलगाववादी मुहिम जहां एक ओर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन से अपनी

दूरियां बढ़ा रही थी, वहीं दूसरी ओर भारत से बाहर की इस्लामी दुनिया और उसके बाशिन्दों से उसका बन्धुत्व बढ़ता ही जा रहा था।[12]

भारत में खिलाफत से सम्बन्धित हलचलें

भारत में खिलाफत आन्दोलन के इतिहास को लेकर जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने विचार व्यक्त किए। नेहरू ने लिखा, 'जब इटली ने 1911 के ट्रिपोली युद्ध में और बाद में 1912 व 1913 के बाल्कन युद्धों के दौरान तुर्की पर हमला किया तो भारत के मुसलमानों में तुर्की के लिए सहानुभूति की आश्चर्यजनक लहर जाग उठी। जहां अन्य भारतीयों में आशंकाएं थीं, मुसलमानों में यह भावना काफी गहरी और व्यक्तिगत थी। आखिरी बची हुई मुस्लिम शक्ति का अस्तित्व खतरे में था और उनके मजहब के भविष्य की आधारशिला ही नष्ट की जा रही थी। डॉ. एम.ए. अंसारी एक चिकित्सकीय अभियान तुर्की ले गए जिसमें गरीब मुसलमानों ने भी चन्दा दिया।'

नेहरू ने आगे लिखा, 'भारतीय मुसलमानों के अपने उद्धार के किसी प्रस्ताव या योजना से कहीं ज्यादा तुर्की की खिलाफत के बचाव के लिए तेजी से पैसा आने लगा। प्रथम विश्व युद्ध मुसलमानों के लिए परीक्षा की घड़ी थी क्योंकि तुर्की पश्चिमी राष्ट्रों के विरुद्ध खड़ा था। मुसलमान अपने आप को असहाय महसूस कर रहे थे। जब युद्ध समाप्त हुआ तो उनकी दबी हुई भावनाएं खिलाफत के रूप में फूट पड़ने वाली थी।'[13]

नेहरू के इस दृष्टिकोण पर आगे चर्चा करने से पहले इस सन्दर्भ में बिपिन चन्द्र पाल की राय जान लेना भी आवश्यक है।

पैन–इस्लाम को लेकर बिपिन चन्द्र पाल के विचार नेहरू से काफी भिन्न थे। पाल ने कहा था, '1911–12 का तुर्क–अफगान संघर्ष ने जहां पैन–इस्लाम को एक नई ऊर्जा दीए विशेषकर भारत में, वहीं इस संघर्ष ने पूरे विश्व के सम्मुख इस भावना के असली उद्देश्य और चरित्र को उजागर भी किया। भारतीय सुधार परिषद (इण्डियन काउन्सिल ऑफ रिफॉर्म्स) में अपनी दबंग धमकियों में सफल होकर सय्यद अमीर ली ने अब खुलकर पैन–इस्लामवाद के प्रति अपनी वफादारी का ऐलान किया। उसके अनुयाइयों ने इटली के खिलाफ जंग में जूझ रहे ओटोमन सल्तनत के लिए भारत में रह रहे मुसलमानों की स्वाभाविक भावनाओं को जमकर भुनाने का काम करना शुरू किया।'

इस सम्बन्ध में बिपिन चन्द्र पाल आगे लिखते हैं, 'वैसे देखा जाय तो भारत का मुसलमान इटली के खिलाफ तुर्की का साथ देने के लिए मजहबी रूप से कतई बाध्य नहीं था (पाल : 373)।' लेकिन पाल ने यह भी कहा, 'भारतीय मुसलमानो की धार्मिक

भावनाएं सिर्फ तुर्की के समर्थन तक सीमित नहीं रहने वाली थी, बल्कि तुर्की लिए लड़ मरने तक के लिए तत्पर थी। यदि मुसलमानों के पवित्र स्थानों पर काफिरों का कब्जा हो जाता और तुर्की उन स्थानों की रक्षा के लिए युद्ध करता, तो भारत के मुसलमान तुर्की का साथ देने के लिए तैयार थे। लेकिन ट्रिपोली, एड्रियानोपल (एदिर्ने) असौ इस्तान्बुल इस्लाम के पवित्र स्थानों में गिने नहीं जाते।'

पाल ने उस सच्चाई को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जो नेहरू ने कभी नहीं किया। पैन–इस्लाम, 'जिसका प्रतिनिधित्व जफर अली खान, सईद मीर अली और मुस्लिम लीग करते हैं, अपने सही और व्यापक्तम मायनों में भारतीय राष्ट्रवाद का शत्रु है।'[14] और आगे चलकर हम भली भांति देखते हैं कि स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात अनेक भारतीय 'विद्वानों' और राजनेताओं ने इस सच्चाई से मुंह चुराया, जो बिपिनचन्द्र पाल के सामने बिलकुल स्पष्ट था।

लाला लाजपत राय (1865–1928) ने कहा, 'किसी की भावनाओं को आहत करने का मेरा उद्देश्य नहीं है, किन्तु यदि विद्यमान परिस्थितियों का ठीक से विश्लेषण किया जाय तो यही देखने में आयेगा कि पिछले तीन सालों में साम्प्रदायिकता और संकीर्ण कट्टरपन्थी विचार बढ़े हैं। खिलाफत आन्दोलन ने ऐसी भावनाएं मुसलमानों में विशेष रूप से दृढ़ की है और हिन्दुओं व सिक्खों में उसकी प्रतिक्रिया का उठना नहीं रुक पाया है।' लाला लाजपत राय ने आगे कहा, 'यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा है कि भारत में खिलाफत आन्दोलन ने राजनीति के बजाय मजहब को अपना आधार बनाया। यह और भी दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि महात्मा गांधी और खिलाफत के अन्य नेताओं ने एक ऐसे आन्दोलन में मजहब को इतनी प्रमुखता से जोड़ा, जो बुनियादी तौर पर मजहबी से ज्यादा राजनीतिक था।'[15] हम यह भी देखेंगे कि अनेक भारतीय 'विद्वानों' और राजनेताओं, स्वतन्त्रता से पहले और बाद में, वह नहीं कहा जो बिपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपत राय स्पष्ट रूप से देख चुके थे।

अपनी आत्मकथा में नेहरू खिलाफत समिति की एक बैठक का विवरण देते हैं, जिसके वे प्रत्यक्षदर्शी थे। जनवरी 1920 में चल रहे अहिंसक आन्दोलन पर खिलाफत वालों की सोच के बारे में नेहरू लिखते हैं, 'मौलवियों के लिए इस विचार को अपनाना आसान नहीं था। वे सहमत तो हुए, लेकिन उन्होंने यह साफ तौर पर कहा कि ऐसा वे सिर्फ एक नीति के तहत कर रहे हैं, विचार के तौर पर बिल्कुल नहीं, क्योंकि उनका मजहब सही उद्देश्यों के लिए हिंसा के इस्तेमाल को वर्जित नहीं करता।'[16]

भारत के मुसलमानों के लिए तुर्की के पिट चुके खलीफा का साथ देना बड़े गर्व की बात थी। देशेतर निष्ठा की बात तो थी ही, लेकिन उनकी निष्ठा को लेकर कोई सवाल उठाया नहीं जा सकता था। और मुसलमानों की इसी मजहबी निष्ठा को खिलाफत के नेता और गांधी भुनाना चाहते थे। मध्य एशिया और मिस्र के मुस्लिम देशों की अपनी यात्राओं और वहाँ के स्थानीय मुसलमाओं से भेंट के पश्चात् लाला लाजपत राय ने यह कहा, 'विश्व के किसी भी अन्य देश के मुसलमानों की तुलना में भारत के मुसलमान कहीं अधिक पैन–इस्लामी और अलगाववादी हैं और अकेला यह तथ्य ही एकजुट भारत के निर्माण को काफी कठिन बना देता है।'[17]

खिलाफत जैसा विचार या व्यवस्था एक आधुनिक विश्व में कितना असंगत है, इस मुद्दे को नेहरू किसी तरह अनदेखी कर देना चाहते थे। अतः कोई आश्चर्य नहीं है कि वे अपनी पुस्तक *'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'* में भारत में 1919 से लेकर 1924 के बीच क्या हुआ, इस पर पूरी तरह मौन हैं। हम आगे यह भी देखेंगे कि स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत की तथाकथित प्रगतिशील इतिहासकारों की जमात ने इस विषय के साथ कैसा व्यवहार किया है।

आजादी के बाद नेहरू सरकार में देश के पहले शिक्षा मन्त्री बनने वाले मौलाना आजाद खिलाफत आन्दोलन के अग्रणी नेताओं में से एक थे और इस आन्दोलन की रूपरेखा और व्यवहार से सम्बन्धित अनेक निर्णयों में शरीक भी थे। उन्होंने कहीं भी इस बात का जिक्र करना जरूरी नहीं समझा कि एक विचार के तौर पर खिलाफत आधुनिक विश्व में कितना असंगत और बुद्धिहीन है। शायद उन्हें यह एहसास भी नहीं हुआ हो कि यह आन्दोलन भारत से बाहर के मुल्कों के प्रति वफादारी को बढ़ावा देने के साथ कट्टरपन्थी तत्त्वों को भड़काने की चाल भर थी। जैसा कि मुजीब कहते हैं, 'अधिकतर लोग (याने मुसलमान) इसे आशापूर्ण संकेत मान रहे थे कि उलेमा अब सियासी मैदान में भी उतर आए थे।'[18]

उधर अंजुमन–ए–खुद्दाम काबा (काबा के खिदमतगारों की संस्था) की स्थापना दिल्ली में 1913 में हुई। इस संस्था का उद्देश्य था मुसलमानों के पवित्र स्थानों की रक्षा करना। इस के लिए भारत से मुसलमान हाजियों को जेड्डा (सऊदी अरब) भेजने हेतु जहाज खरीदने के लिए चन्दा इकट्ठा किया जाने लगा। अंजुमन–ए–खुद्दाम काबा ने तो तुर्की नौसेना के लिए एक युद्धक जहाज का प्रबन्ध करना चाहा।[19]

मौलाना अब्दुल बारी ने कहा कि यदि ब्रिटिश हुकूमत ने तुर्की के सुलतान यानी खलीफा के साथ न्याय नहीं किया तो भारत में रह रहे मुसलमानों को

दार–उल–इस्लाम के अधीन किसी देश चले जाना चाहिए। इस मौलाना ने मुसलमानों को अफगानिस्तान जाने का सुझाव दिया। मौलाना अब्दुल बारी के इस फतवे के बाद लगभग 18,000 मुसलमानों ने अपनी सम्पत्तियां बेचकर अफगानिस्तान का रुख किया भीए जो उनके परिवारों के लिए बरबादी की दास्तान से कम नहीं थी। लेकिन जो लोग अफगानिस्तान से लौटे, उनकी देखभाल में भारत में सक्रिय खिलाफत के हिमायतियों ने काफी काम भी किया। यदि अफगानिस्तान की सरकार अपने देश में प्रवेश पर रोक न लगाती, तो भारत से और भी मुसलमान वहां जा बसने की तैयारी में थे।[20]

खिलाफत आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने वाले और खिलाफत समिति की बैठकों में बराबर शरीक रहने वाले गांधी का इस सब के बारे में क्या कहना था, यह जानना काफी दिलचस्प होगा। गांधी ने कहा, 'मुसलमानों का पलायन जारी है और रास्ते में उनकी खूब वाह–वाही हो रही है। उन्हें लगता है कि एक ऐसे राज्य का त्याग करना ही बेहतर है जो उनकी मजहबी भावनाओं का जरा भी सम्मान नहीं करता। आलीशान घर में भिखारियों जैसी जिन्दगी जीने से अच्छा वे इसे छोड़ना पसन्द करेंगे।'[21]

उधर प्रथम विश्व युद्ध के बाद ओटोमन साम्राज्य का पतन बस होने ही वाला था और मुसलमानों को इस बात का एहसास हो रहा था। वे इस स्थिति को यथासम्भव और बिगड़ने से बचाना चाहते थे। मार्च 1920 में प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त आयोजित शान्ति सम्मेलन में मुसलमानों की ओर से निम्नलिखित तीन मांगें लेकर शामिल हुए –

- मुसलमानों के पवित्र स्थानों पर खलीफा के रूप में तुर्की के सुल्तान का अधिकार अक्षुण्ण रखा जाय।
- मजहब–ए–इस्लाम की हिफाजत के लिए सुल्तान के पास पर्याप्त भूमि हो।
- जजीरात–अल–अरब पर मुस्लिम अधिकार कायम रहे।

भारत में कॉंग्रेस के संस्थापकों में से एक, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, जिन्हें 'भारतीय राष्ट्रवाद का पैगम्बर' भी कहा जाता है – ने कहा, 'जब मैं इंग्लैण्ड में था तब खिलाफत के प्रश्न को लेकर वहां के मुस्लिम निवासियों की एक बैठक की अध्यक्षता करने को कहा गया क्योंकि मैं भारतीय मुसलमानों की मांग से पूर्णतः सहमत हूं। ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री लॉयड जॉर्ज की घोषणा के अनुरूप खिलाफत मसले के समाधान की भारतीय मुसलमानों की मांग जरूर मानी जानी चाहिए।'[22] हम देखते हैं कि बनर्जी जैसा प्रभावशाली नेता भी, जो अनेक सार्वजनिक मामलों में अपनी दृढ़ता, साहस और

सिद्धान्तवादी रुख के लिए 'समर्पणहीन' के रूप में जाने जाते थे, मुसलमानों के इस मजहबी जुनून में निहित खतरे को पहचानने में असमर्थ रहे। यह बात जरूर है कि बाद में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपनी राय बदली।

कई मुस्लिम नेता अब अधीर होने लगे थे। भविष्य में खिलाफत आन्दोलन का रुख कैसा होना चाहिए, इसके बारे में इन नेताओं ने अपनी राय स्पष्ट की। फकीर कयामुद्दीन और मुहम्मद अब्दुल बारी ने 14 मई, 1940 को केन्द्रीय खिलाफत समिति के अध्यक्ष मिया मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद चोटानी को पत्र लिखकर कहा, 'सहिष्णुता और शान्ति की सीख हमारे लिए तकलीफ देने वाली सीख है। जनाब गांधी से कहिए कि जहां मैं उनकी सलाह के मुताबिक चलूंगा, वहीं मैं उन लोगों को बिल्कुल नहीं रोकूंगा, जो अपनी जल्दबाजी में उसके खिलाफ हरकत करें, भले ही मैं उन्हें भड़काऊंगा नहीं। क्योंकि अपनी अलग राय रखने के बावजूद मैंने उनकी सलाह के मुताबिक काम करने का वादा किया है। लेकिन यह याद रखा जाना चाहिए कि हम उन पर भरोसा कर चुपचाप नहीं बैठे रहेंगे। उनका शुक्रिया अदा जरूर करेंगे लेकिन अपना मजहबी फर्ज हम अदा करके ही रहेंगे। यह हमारा मजहबी फर्ज है, जिसमें तबदीली नहीं हो सकती। इसे अदा करने में हम अल्लाह को छोड़कर किसी और पर भरोसा नहीं कर सकते। ऐसा करने से हमें जो रोकना चाहेगा, मुसलमान हो या गैर–मुसलमान, उसे हमारे दुश्मनों की सूची में शामिल कर लिया जाएगा।'

इसके विपरीत खिलाफत आन्दोलन के शुरुआती दौर में धैर्य और सावधानी बरतने के कुछ स्वर भी सुनाई पड़े, हालांकि ये अल्पमत में थे। खिलाफत समिति के मानद सचिव बदरुद्दीन कूर ने अपनी राय व्यक्त की कि खिलाफत आन्दोलन से मुसलमानों की स्थिति हिन्दुओं की तुलना में कमजोर पड़ जाएगी क्योंकि मुसलमानों द्वारा छोड़ी गई नौकरियां हिन्दू हथिया लेते। परिणामस्वरूप इस्लाम कमजोर हो जाता। कूर ने आगे कहा, 'यदि मुसलमान बर्बादी के इस रास्ते पर चल पड़ेंगे तो मुझे डर है कि खिलाफत के मसले के खत्म होने के काफी बाद तक हमें इसका खामियाजा भुगतते रहना होगा। यह साफ है कि असहयोग आन्दोलन इस बात पर जोर देता है कि भारतीय मुसलमानों को हिंसा और खून–खारेबे से बाज आना चाहिए। लेकिन मुसलमानों की फितरत और जज्बातों से जो वाकिफ हैं, और यह भी देख रहे हैं कि भारत के मौजूदा माहौल में मजहबी जुनून सवार है, उन्हें यह यकीन दिलाना मुश्किल होगा कि मुसलमान इस नेक सलाह को मानने वाले हैं। अगर असहयोग को एक जिन्दा चीज बनाना है तो शान्ति बनाए रखनी होगी, लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि ब्रिटेन की उदासीनता की वजह से निराश और हताश हुआ यह बड़ा तबका, जो बहुत ज्यादा पढ़ा–लिखा नहीं है और काफी जज्बाती है, इस सलाह को मानेगा। इसलिए जोखिम तो साफ दिखाई देता है।'[23]

अर्थात यह स्पष्ट है कि खिलाफत आन्दोलन के दौरान हिंसा की धमकियां दी जा रही थी। लेकिन भारत में खिलाफत की आग भड़काने की पूरी कोशिश में लगे राजनेता उसके खतरों से पूरी तरह अनभिज्ञ थे। गांधी हमेशा की भांति अपने अलग विचार रखते थे। उन्होंने 22 जून, 1920 को वायसरॉय को पत्र लिखकर कहा, 'मुसलमान सिपाहियों ने अपने ही खलीफा पर जुल्म ढाने या उसे अपने क्षेत्र से वंचित करने के लिए युद्ध नहीं किया है। मुसलमानों और हिन्दुओं का ब्रिटिश न्याय और सदाचार पर से विश्वास उठ गया है। चूंकि ब्रिटिश संविधान में मेरा विश्वास है, मैंने अपने मुसलमान दोस्तों को यह सलाह दी है कि वे महामहिम की सरकार से अपना समर्थन वापस लें और हिन्दुओं से भी कहा है कि वे मुसलमानों का साथ दें।'[24]

इस बीच और भी घटनाएं हो रहीं थी। नगीना में 3 अप्रैल, 1920 को हुए अखिल भारतीय शिया सम्मेलन ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादारी की प्रस्तावना पारित की।[25] भारत में इस खिलाफत आन्दोलन को लेकर और भी प्रतिक्रियाएं हुई। यहां रहने वाले यूरोपीय समुदाय ने वायसरॉय को पत्र लिखकर एक अनुरोध किया। भारत के यूरोपीय समुदाय तुर्की के प्रधान शहर कुस्तुनतुनिया में सुल्तान को टिकाए रखने और मुस्लिम समुदाय के मुखिया के रूप में उसकी मान्यता अक्षुण्ण रखने के पक्ष में था। उनका अनुरोध यह था वायसरॉय ब्रिटिश प्रधानमंत्री और संसद को उनकी इस इच्छा से अवगत कराएं।[26] यह इस बात का भी द्योतक था कि यूरोपीय समुदाय का एक हिस्सा खलीफा से सहानुभूति रखता था।

यदि भारतीय मुसलमानों के शासक, यानी ब्रिटिश, मुस्लिम राष्ट्रों से युद्ध करते, तो यहां रहने वाले मुसलमानों का कर्त्तव्य क्या होता? तुर्की और यूरोपीय शक्तियों के बीच 19वीं शताब्दी में संघर्ष छिड़ा। इस सन्दर्भ में सर सय्यद अहमद खान ने कहा था, 'हम अल्लाह से बस दुआ कर सकते हैं कि ब्रिटिश हुकूमत के तुर्की, फारस और अफगानिस्तान जैसे मुस्लिम राज्यों के बीच ताल्लुकात हमेशा दोस्ताना रहे और उनके बीच कोई संघर्ष नहीं हो। लेकिन यदि ब्रिटिश सरकार तुर्की के प्रति गैर–दोस्ताना रवैया अपनाने को मजबूर होता है, तो हम इस्लाम की शिक्षा के अनुसार मुसलमानों को अपने हुक्मरानों के प्रति हुक्म अदायगी और निष्ठा की जिम्मेदारियों से आजाद नहीं कर सकते हैं। हमारे मजहब द्वारा बताए गए फर्ज के मुताबिक हमें अपने हुक्मरानों की बात माननी पड़ेगी और उनसे वफादारी रखनी होगी।' इस मुद्रा के पीछे सर सय्यद की व्यावहारिकता साफ झलक रही थी। सय्यद अहमद खान ब्रिटिश राज के पूरे भक्त थे। वे ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति और इस्लामी ताकतों के अवश्यंभावी पतन को साफ भांप चुके थे, अतः इस्लामी मजहबी सीख और हिदायतों का जान–बूझकर अपने हितों के

लिए मनमाना अर्थ निकाल रहे थे। अथवा उन्होंने यह भी सोचा होगा कि इस्लामी मजहबी सीख की इस तरह व्याख्या कर वे अपनी कौम के लोगों का ज्यादा भला कर सकेंगे।[27]

भारत में खिलाफत के नेता

मौलाना अबुल कलाम आजाद भारत में खिलाफत आन्दोलन के उस दौर में उर्दू अखबार अल हिलाल के भूतपूर्व सम्पादक के रूप में जाने जाते थे। साथ ही अबुल कलाम आजाद हिज्बुल्ला सोसाइटी तथा कलकत्ता के दार–ऊक–इर्शाद कॉलेज के संस्थापक भी थे। मौलाना आजाद को एक 'अतिवादी किस्म का पैन–इस्लामी, अंग्रेजों का घोर विरोधी और अत्यन्त कट्टरपन्थी' बताया गया। वे लाहौर में एक सूफी अम्बा प्रसाद और अजित सिंह के भी सम्पर्क में आए और उनकी और उनके साथियों के अतिवादी प्रचार में सहायता करते भी पाये गए थे। ऐसा भी माना जाता है कि मौलाना आजाद ने बंगाल के अराजकतावादियों के तौर–तरीकों के लिए अपनी प्रशंसा भी व्यक्त की थी।[28]

खिलाफत के अन्य नेता थे मुहम्मद अली और उसका भाई शौकत अली, और डॉ. एम.ए. अंसारी, जिन्होंने 1912 में तुर्की जा रहे एक चिकित्सकीय दल का नेतृत्व किया था। हकीम अजमल खान और अब्दुल बारी अन्य खिलाफत नेताओं में थे। भारत में खिलाफत आन्दोलन के नेतृत्व की एकमुश्त राय थी, 'सभी मुसलमानों के नेता और उनके मजहबी स्थानों के संरक्षक के रूप में अपनी जिम्मेदारियों के निर्वहन के लिए खलीफा के पास पर्याप्त सांसारिक क्षमता और अधिकार होने चाहिए।'

इस सम्बन्ध में मुहम्मद अली की साफ राय थी, 'तुर्की का सुल्तान ओटोमन रियाया के हुक्मरान से आगे बढ़कर कुछ और है। वह एक सम्राट और पोप (धर्मगुरु) है और अपने में खलीफा और पैगम्बर के उत्तराधिकारियों की भूमिका लिए हुए है। इस्लाम दीन और दुनिया (आध्यात्मिक और सांसारिक) विषयों के बीच में किसी भी प्रकार के विभाजन को स्वीकार नहीं करता और एक इस्लामी शासक का कौम का मजहबी नेता भी होना इस्लाम की इसी सोच की सहज और तर्कसंगत परिणति है। आपको यह याद रखना चाहिए कि इस्लाम सिर्फ एक मजहब नहीं बल्कि एक मुकम्मल मजहबी तन्त्र (थियॉक्रसी) है। इस धरती पर अल्लाह की हुकूमत है।'[29]

लखनऊ के फिरंगी महल के अब्दुल बारी ने सितम्बर, 1920 के दिनों में मुसलमानों को हिन्दुओं से सौहार्द कायम रखने की सलाह देते हुए यह कहा था कि हिन्दुओं का

सहयोग प्राप्त करने के लिए मुसलमानों को गोहत्या बन्द करनी चाहिए। लेकिन सितम्बर, 1923 में उनकी भाषा बिलकुल बदली हुई थी। 'किसी समय हिन्दू–मुस्लिम एकता की बातें करने वाले अब्दुल बारी अब फिर सामने आए। लेकिन अब वे एक कठमुल्ले के जबान लिए हुए थे। बारी ने खुलकर मुसलमानों से गायों को काटने के लिए कहा और ऐलान किया, 'यदि शरियत के हुक्मों को रौंदना ही है तो कोई फर्क नहीं पड़ता कि ऐसा दिल्ली के मैदान में हो या शिमला की पहाड़ियों में। हम इस्लाम के हर दुश्मन से असहयोग पर दृढ़ है, चाहे वह अनाटोलिया (तुर्की) में हो, आगरा में हो या बनारस में हो।'

इस तरह पलटी मारने की एक सरल व्याख्या यह है कि जब खिलाफत करने वालों को हिन्दुओं की सहायता की आवश्यकता थी, वे बड़े सौम्य और मीठे व्यवहार करते रहे। लेकिन जैसे ही तुर्कों ने ही उन्हें अपनी औकात दिखा दी, भारत के खिलाफती मुसलमान अपना असली रंग दिखाने लगे। इस सम्बन्ध में (स्वर्गीय) सीताराम गोयल ने उचित ही लिखा भी है, 'ये (खिलाफत वाले) नेता इस्लामी साम्राज्यवादी थे, जिन्हें 'राष्ट्रवादी मुसलमानों' के रूप में पेश किया जा रहा था।' बल्कि सीताराम गोयल ने तो अली बन्धुओं को 'पैन–इस्लामी षड्यन्त्रकारी और सार्वजनिक सम्पत्ति पर हाथ साफ करने की आदत रखने वाले' बताया है। गोयल के अनुसार, 'ऐसे इस्लामी मजहबी लोगों को प्रोत्साहन देना एक गम्भीर भूल थी। इस भूल और अपराध ने मिलकर हमारे राष्ट्रीय नेतृत्व के हर विकल्प को समाप्त किया और उसे अन्ततः निरीह समर्पण – यानी देश के विभाजन – पर विवश कर दिया।'[30] यह आवश्यक है कि मोहम्मद अली जिन्ना, जो पाकिस्तान के संस्थापक थे, ने इस आंदोलन का जमकर विरोध किया था।

खिलाफत आन्दोलन की प्रेरणा

बिमल प्रसाद ने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि जहां मजहबी कारण महत्वपूर्ण था, वहीं हम सत्ता की ललक की अनदेखी भी नहीं कर सकते, जो हमेशा ही भारत में पैन–इस्लामी मुहिम में एक प्रमुख कारक रहा है। साथ ही भारत में मुसलमानों का यहां से बाहर रहने वाले मुसलमानों के साथ भाईचारे की भावना भी रही है। भारत में ब्रिटिश शासन के समय भी इस्लाम का राजनीतिक सत्ता से नजदीकी रिश्ता था। भारत के मुसलमानों को भारत के बाहर शक्तिशाली मुस्लिम राज्यों से काफी मनोवैज्ञानिक सुकून अनुभव होता था। जब भी उन राज्यों के अस्तित्व पर खतरा मंडराया, भारत के मुसलमान भी आशंकित हो उठते थे। तुर्की साम्राज्य अपने विस्तार और शक्ति के कारण इस कोटि की आश्वस्ति का सबसे बड़ा स्रोत था। साथ ही, तुर्की का सुल्तान खलीफा

का खिताब भी धारण करता था और उसे सभी मुसलमानों का मजहबी नेता भी माना जाता था।

गांधी के बारे में बिमल प्रसाद का कहना है कि उन्होंने खिलाफत आन्दोलन में, 'उसकी सत्ता–लालसा की पूरी तरह अनदेखी की और केवल उसकी मजहबी प्रेरणा पर ध्यान केन्द्रित किया।' प्रसाद अपने सौम्य–कथन में स्पष्ट सच्चाई की अभिव्यक्ति से स्वयं को रोक रहे हैं। अनेक शताब्दियों के इतिहास पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि आदिम वृत्तियों को प्रोत्साहन, जैसा कि 1920 में 'खिलाफत को बचाने' के नाम पर किया गया, अकल्पनीय परिणामों वाला भूल ही होता है।

हिन्दुओं से भी इस खिलाफत आन्दोलन में शरीक होने का आह्वान करते हुए गांधी ने कहा, 'तुर्की का मसला भारत में आठ करोड़ मुसलमानों से जुड़ा है और जो प्रश्न भारत के एक–चौथाई हिस्से से जुड़ा है, वह पूरे भारत का मसला होना चाहिए। यह सम्भव नहीं है कि राष्ट्र के चार अंगों में से एक घायल हो और बाकी राष्ट्र निश्चिन्त रहे। यदि ऐसे किसी घाव का हम पर कोई प्रभाव न हो तो हमें एक राष्ट्र नहीं कहा जा सकता।' उदारवादी विचारों वाले समाचार पत्र मैनचेस्टर गार्डियन, जो भारत के प्रति सहानुभूति भी रखता था, ने बताया कि कुछ ही महीनों पहले गांधी ने केरल के मलबार इलाके में कई सभाओं को सम्बोधित किया था।

किन्तु जैसा प्रसाद कहते हैं, 'खिलाफत असहयोग आन्दोलन को ज्यादा से ज्यादा एक साझा संघर्ष कहा जा सकता है, समान राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं। भारतीय राष्ट्रवाद और मुस्लिम राष्ट्रवाद ने एक साझा मोर्चा बनाया था लेकिन उनका एक समान राष्ट्रवाद में विलय नहीं हुआ।'[31]

जूडिथ ब्राउन ने भारत में चल पड़े खिलाफत आन्दोलन के महत्व का एक महत्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत करते हुए कहा है, 'खिलाफत को अपना समर्थन देते समय गांधी उन लाखों भारतीय मुसलमानों के हितों के प्रति आंखें मूंद बैठे थे, जो कुछ प्रान्तों में बहुमत में थे। एक नए प्रस्तावित संविधान के तहत उनके बहुमत से उन्हें काफी फायदा होता और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध खड़े होने में उन्हें कोई लाभ नहीं था।'[32] किन्तु यह कहते समय ब्राउन ने एक बात की उपेक्षा की है। भारत में मुस्लिम राजनीति ने सामान्यतः इस्लामी जगत से अपने सम्बन्धों और उम्माह के प्रति निष्ठा को ही वरीयता दी है।

एक ओर जहां गांधी और खिलाफत के हिमायती तुर्की के इस्लामी खिलाफत की बहाली की अपनी मांग को लेकर टकराव के रास्ते पर आगे बढ़ रहे थे, वहीं तुर्की के

नवोदित सुधारवादी नेता मुस्तफा कमाल अतातुर्क नवम्बर, 1922 को खिलाफत को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प थे। अतातुर्क ने तुर्की के मजहबी प्रमुखों को साफ चेतावनी दी कि यदि उन्होंने इस साधारण से तथ्य को मानने से इनकार किया तो जो होना है वह तो होकर ही रहेगा। फर्क सिर्फ इतना होगा कि कुछ सिरों को कलम करना होगा।[33]

खिलाफत आन्दोलन के परिणाम

खिलाफत आन्दोलनकारियों की प्रशंशा की जानी चाहिए कि एक ऐसे समय में जब संचार और यातायात आसान नहीं थे, वे लन्दन से लहासा (तिब्बत की राजधानी) और कश्मीर से केरल तक खिलाफत के मकसद का प्रचार करने के लिए संगठन खड़ा करने में सफल हो गए थे। लन्दन आज की ही भांति तब भी हर स्रोत से प्रसार के प्रचार (या दुष्प्रचार) करनेवालों के लिए खुला था, यहां तक कि ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध प्रचार करने वालों के लिए भी। आगा खान और सैयद अमीर अली जैसे लोग इसका भरपूर लाभ उठाकर लन्दन में खिलाफत का बढ़–चढ़कर प्रचार करने में सबसे आगे थे।[34]

लहासा में स्थित कुछ मुसलमान व्यापारी बंगाल खिलाफत समिति द्वारा जारी पर्चियां बांटते हुए पाये गए।[35] भारत का उत्तर पश्चिमी प्रान्तए जो वैसे ही प्रायः अशान्त रहता थाए खिलाफत आन्दोलन के कारण काफी उद्वेलित रहने लगा।[36] कराची में 22 जुलाई, 1920 को भाषण देते हुए गांधीजी ने हिन्दुओं को धमकाया कि यदि उन्होंने मुसलमानों के संकट के समय उनकी सहायता नहीं की, तो उनकी (हिन्दुओं की) गुलामी निश्चित है।[37] कहना पड़ेगा कि गांधीजी की बातें सही निकली!

गांधी ने वड़ताल (गुजरात) में 19 जनवरी, 1920 को एक सार्वजनिक बैठक को सम्बोधित करते हुए कहा, 'मैं सभी हिन्दू साधुओं से कहना चाहता हूं कि यदि वे खिलाफत की खातिर अपने सर्वस्व का त्याग करते हैं, तो हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने एक महान कार्य किया होगा। आज इस्लाम को खतरे से बचाना हर हिन्दू का कर्त्तव्य है। यदि आप ऐसा करते हैं, तो भगवान स्वयं मुसलमानो को यह प्रेरणा देंगे कि वे हिन्दुओं का अपने मित्रों की भांति देखें और हिन्दू भी मुसलमानों को अपना मित्र समझें।'[38]

गांधी का आगे कहना था, 'हिन्दू पैन–इस्लाम से डरें नहीं। पैन–इस्लाम का भारत–विरोधी या हिन्दू–विरोधी होना जरूरी नहीं है। अगर हिन्दू–मुसलमानों के सच्चे

दोस्त हैं तो उन्हें मुसलमानों की भावनाओं को समझना चाहिए। इसलिए यूरोप में तुर्की साम्राज्य को समाप्त होने से बचाने की अपने मुसलमान भाइयों की कोशिशों में हमें उनका सहयोग करना चाहिए।'[39]

गोरक्षण को लेकर हिन्दू काफी उत्तेजित थे और उस पर पूर्ण निषेध चाहते थे। गांधी स्वयं इस बात से सहमत थे लेकिन इस मुद्दे पर भी उनकी सलाह कुछ ऐसी थी, 'खिलाफत आन्दोलन में हिन्दुओं की सहभागिता गो–रक्षा के लिए सबसे उत्तम आन्दोलन है। इसलिए मैंने खिलाफत को अपनी कामधेनु (पौराणिक युग की इच्छापूर्ति करने वाली गाय) कहा है।'[40]

आज की तरह तब भी बंगाल हर प्रकार की इस्लामी गतिविधियों के लिए एक उर्वरा भूमि थी, वहां के 'सेकुलर' और 'प्रगतिशील' प्रचार करने वाले चाहे जो कहें।[41] यह भली–भांति विदित है कि बंगाल के मुसलमान असहयोग आन्दोलन में सिर्फ इसलिए शामल हुए क्योंकि उसमें खिलाफत के प्रश्न को भी जोड़ा गया। खिलाफत आन्दोलन के चरम पर भी बिना उसका जिक्र किए किसी भी मुसलमान की रुचि असहयोग आन्दोलन में जगाना लगभग असम्भव था। जब खिलाफत आन्दोलन समाप्त हुआ, तब बड़ी संख्या में मुसलमानों ने कांग्रेस छोड़ा।[42]

खिलाफत के विचारों के प्रसार के समाचार देश के अन्य भागों से आने लगे थे। एक रिपोर्ट में कहा गया, 'मद्रास प्रेसिडेन्सी (प्रान्त) में असहयोग आन्दोलन के सम्बन्ध में कहा गया कि भले ही हिन्दू केवल गांधी के कारण खिलाफत आन्दोलन को अपना समर्थन देने आगे आए थे, हर स्थान पर ऐसी बात नहीं थी। मद्रास प्रान्त में राजगोपालचारी– जिनका उल्लेख उन दिनों 'सेलम के वकील' के रूप में किया गया– के बारे में कहा गया कि वे हिन्दुओं को मुसलमानों से सहयोग करवाने के लिए कार्य कर रहे थे। उन्हीं के प्रभाव का परिणाम था कि हिन्दू अपनी दुकानें बन्द रखने पर सहमत हुए। करूर (मद्रास) से हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच झड़प का समाचार प्राप्त हुआ। जब एक नाटक मण्डली ने खिलाफत के लिए चन्दे के योगदान हेतु अपने नाट्य के मंचन से इनकार किया तो वह मुस्लिम भीड़ के हमले का शिकार हुआ।'[43]

बंगाल के एक मुसलमान बादशाह मियां का उल्लेख भी यहां प्रासंगिक होगा। यह शख्स एक 'खिलाफत आन्दोलनकारी' के रूप में विख्यात था और जद्दा (सऊदी अरब) के ब्रिटिश अधिकारी और काउन्सल ने बताया कि बादशाह मियां सऊदी अरब के शाह हुसैन को खलीफा के रूप में देखने का बड़ा हिमायती था।[44]

खिलाफत के लिए व्यापक मुस्लिम समर्थन ने गैर–मुस्लिम समुदायों में मुसलमानों की वफादारी और देशभक्ति को लेकर सन्देह पैदा किया। पैन–इस्लामवाद बंगाल के मुसलमानों की मानसिकता पर पूरी तरह हावी हुआ और उनमें एक संकीर्ण भावना घर कर गई। कुछ समय के लिए ही सही, वे पहली बार भारत के उत्तरी हिस्से के मुसलमानों से राजनीतिक एकता का अनुभव करने लगे।[45]

पंथ–निरपेक्ष राष्ट्रवाद का जो कुछ प्रभाव मुसलमानों के मन–मस्तिष्क पर पड़ा था, इस देशेतर निष्ठा, और वह भी एक मध्ययुगीन, घोर रूढ़िवादी और नितान्त अनावश्यक उद्देश्य के लिए किए गए आन्दोलन ने उसे पूरी तरह निरस्त कर दिया।

केरल का नरसंहार – खिलाफत का खूनी चेहरा

भारत में इस बेहूदे खिलाफत आन्दोलन का सबसे प्रमुख और भीषण रूप से त्रासद परिणाम था, केरल के हिन्दुओं पर टूटा इस्लामी कहर। यह घटना हमारे देश के इतिहास में मोपला नरसंहार के नाम से कुख्यात है। खिलाफत के जुनून से भरे केरल के मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं को जो झेलना पड़ा, उसका यथोचित वर्णन भी नहीं किया जा सकता। इसे आजकल के तथाकथित इतिहासकार 'मोपला विद्रोह' का नाम देकर रफा–दफा करने की फिराक में हैं, लेकिन वास्तव में यह औपनिवेशिक काल का एक भयानक हिन्दू नरसंहार था, जो मजहब–ए–इस्लाम के नाम पर किया गया।

इस नरसंहार की शुरुआत तब हुई, जब ब्रिटिश भारतीय सेना के मुसलमान सैनिक प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त भारत लौटने लगे। इनमें से कई सैनिक केरल के मुसलमान भी थे। इधर देश का राजनीतिक माहौल उत्तेजित हो रहा था। 1920 में जगह–जगह कांग्रेस द्वारा खिलाफत समितियां बनायी जा रही थीं। सैनिक पृष्ठभूमि वाले मुसलमानों ने इन समितियों में घुसकर हिन्दुओं पर खुल्लम–खुल्ला हमले की जमीन तैयार की। लेखक मिनॉल्ट कहते हैं, 'काफी संख्या में मुसलमान सैनिक सेना से निवृत्त होकर विदेशों से लौटे थे। इन मुसलमानों को हथियार चलाने का प्रशिक्षण और ठोस कार्रवाई का अभ्यास था। और इन्हीं के इर्द–गिर्द कई खिलाफत स्वयंसेवियों की टोलियां जुटने लगी। खाकी वर्दी पहने, हाथों में छुरी लिए ये स्वयंसेवी खिलाफत की मांगों के समर्थन में बैठकें कर एक ऐसे प्रकार के असहयोग का जोर–शोर से प्रचार करने लगे, जिसमें हिंसा पूरी तरह जायज थी।'[46] यह जानना दिलचस्प होगा कि उन कांग्रेसियों ने खिलाफत की इस प्रकार और पैमाने की तैयारियों का जायजा लिया था, अथवा उसकी पूरी अनदेखी की, जब वे बिना किसी कारण के लोगों को खिलाफत में हिस्सा लेने को मजबूर कर रहे थे।

आज अनेक ऐसे टिप्पणीकार हैं, जो केरल के मोपला मुसलमानों के हाथों वहां के हिन्दुओं के कत्ल–ए–आम को उचित ठहराने में जरा भी नहीं हिचकते, भले ही इसके लिए उन्हें जो कहानी गढ़नी पड़े। कुछ 'प्रगतिशील बुद्धिजीवियों' ने तो कृषि–सम्बन्धी कारणों का प्रचार करने की कोशिश की है, हालांकि इस नरसंहार के वास्तविक कारणों का बयान करने वाले इतिहासकार भी है। सत्य कहने वालों ने माना है कि हिन्दुओं के इस नरसंहार की जड़ें इस्लामी कट्टरता और 'दूसरों' के लिए उसकी अमिट घृणा में है। यदि यह केवल एक कृषि–सम्बन्धी मुद्दा होता, तो भारत के अन्य हिस्सों में उसी दौरान किसानों के संघर्षों सूत्रपात क्यों नहीं हुआ? भारत में कहीं भी खेतिहर मजदूरों के दुखड़ों की कमी तो न तब थी, न आज है। दरअसल केरल के मालाबार की वह घटना एक हिन्दू–विरोधी कत्ल–ए–आम थी, जिसे मजहब की पूरी अनुशन्सा प्राप्त थी। भारत में ऐसे अनेक स्थान हैं जहां भू–सम्पत्ति वाले हिन्दुओं के यहां गरीब मुसलमान मजदूर और अमीर मुस्लिम जमीनदारों के यहां गरीब हिन्दू किसान मजदूरी करते हैं। चाहे हिन्दू–बहुल इलाका हो या मुस्लिम–बहुल, किसानों के अभाव और कष्टों की कहानी हर कहीं है। 20वीं शताब्दी में यह और बढ़ चली थी, क्योंकि सभी को अपने–अपने अधिकारों का भान भी होने लगा था। केरल में भी मालाबार में जहां हिन्दू बहुसंख्यक हो चले थे, वहीं अनेक वर्षों से मुसलमान संगठित हो रहे थे। 20वी शताब्दी की शुरुआत के एक ब्रिटिश प्रपत्र ने हिन्दुओं के खिलाफ मोपलों के आन्दोलन को 'अपनी बर्बरता के लिए उल्लेखनीय' बताया।[47]

केरल में हिन्दुओं को मालाबार जिले में बड़ी बेरहमी से मारा गया। इसे मजहबी घृणा और वैमनस्य के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता है। अतरू उसकी वास्तविकता को ढकने के किसी भी प्रयास का – जो मोपला नरसंहारकों के पक्षधर बुद्धिजीवी आज भी करते हैं – घोर रूप से अनुचित है।

मैनचेस्टर गार्डियन ने स्पष्ट किया कि कृषिगत शिकायतों के बावजूद 'मजहबी कट्टरता तो एक अविवादित बात है।' कुछ महीनों बाद इसी अखबार ने फिर टिप्पणी की, 'पूरा भारत मोपलों द्वारा किए गए इस खूंखार नरसंहार को लेकर व्यथित है। इस काण्ड से साफ है कि आज भी हिन्दुओं को कट्टर मुसलमानों के हाथों क्या–क्या झेलना पड़ रहा है। जनता असपष्ट किन्तु उचित ही हिन्दू लोगों के इस संहार के लिए खिलाफत के प्रचारकों को दोषी ठहराती है और उसे यह भी आभास होने लगा है कि दम्भी ब्रिटिश लोगों का शासन भी शासनहीनता से कहीं अच्छा है।'[48]

हमें यह भी याद रखना होगा कि किसानों की शिकायतों से अलग, खिलाफत के हिमायतियों का असली उद्देश्य एक इस्लामी खिलाफत की स्थापना थी। एक खिलाफत

नेता अली मुसलियार 'खिलाफत, जमीन पर हक और स्वराज' की मांग कर रहा था। उसने यहां तक दावा किया कि एक सपने में उसने एक तंगल (मजहबी नेता) को देखा जिसने यह कहा, 'खिलाफत कायम करने का वक्त आ गया है' और एक खिलाफतनुमा मजहबी–सियासी व्यवस्था के सभी तामझाम खड़ा करने का वादा किया। शीघ्र ही केरल में असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व माधवन नायर और गोपाल मेनन जैसे कांग्रेसी नेताओं से खिसककर तंगलों और हाजियों के हाथों चला गया। 1921 के आते–आते तो स्वराज का लक्ष्य नेपथ्य में जा चुका था। उसकी जगह खिलाफतनुमा राज्य कायम करने के सपने ने ले लिया था।[49]

केरल में इसके परिणामों पर भी जरा हम नजर डालें। 500 से 1,500 हिन्दुओं का जबरन इस्लाम में धर्मान्तरण करवाया गया। वुड का कहना है कि इस्लाम कुबूल न करने पर मार डाले गए हिन्दुओं की संख्या का अनुमान लगाना कठिन है। आर्य समाज के सूत्रों के अनुसार जबर्दस्ती मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं की संख्या 2,500 के आसपास थी। इतिहासकार बी.आर. नन्दा ने भी इस आंकड़े को स्वीकारा है। स्पष्ट था कि हिन्दू महिलाओं के साथ बलात्कार भी हुआ था। तोड़े गए/अपवित्र किए गए मन्दिरों की संख्या लगभग 100 थी। इतना ही नहीं, जबर्दस्ती मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं को जिहादियों के साथ मिल उन हिन्दुओं पर हमला करने के लिए विवश किया गया, जिन्होंने इस्लाम कबूल करने से इनकार किया। इन तथाकथित किसान नेताओं – जैसा कि मार्क्सवादी इतिहासकार या नेता केरल के मोपला जिहादियों का वर्णन करते हैं – के साथ अक्सर मुल्ले भी चलते थे ताकि हिन्दुओं पर हमला करके मौके पर ही उन्हें मुसलमान बनाया जा सके। अतः यह निश्चित रूप से हिन्दुओं पर एक पूर्वनियोजित और व्यापक हमला था। यह जिहादी हमला किसी समाजवादी या रूसी बोल्शेविक विचारधारा से प्रेरित नहीं था। इसका पता इस बात से भी चलता है कि हमलों के शिकार केवल सम्भ्रान्त नम्बूदिरी या नायर समुदाय ही नहीं बल्कि एयवा और चेरुमन जैसे पिछड़े समुदाय के हिन्दू भी उतने ही हुए।[50] पणिक्कर नाम के एक वामपन्थी इतिहासकार ने तो धूर्तता की हद ही कर दी है। जिहादी मुसलमानों से काफी सहानुभूति रखने वाला यह इतिहासकार इस भली–भांति नियोजित और अंजाम दिये गए जिहादी हमले को 'मोपलाओं और मलाबार हिन्दुओं दोनों ही के लिए एक त्रासद अनुभव' बताते हुए हमलावारों और उनके शिकार हिन्दुओं को एक ही धरातल पर ला खड़ा कर देता है।

हिन्दुओं को राहत मिली तो ब्रिटिश सेना की कार्रवाई से, जिसे खिलाफत की शान के नाम पर हिन्दुओं पर हुए इस अत्यन्त ही संगठित हमले को कुचलने के लिए बुलाना

पड़ा। सरकारी सूत्रों के अनुसार सेना की कार्रवाई में 2,339 मोपला मुसलमान मारे गए और 1,652 घायल हुए। 5,955 मोपलों को बन्दी बनाया गया और 39,348 जिहादियों ने समर्पण किया। इस मोपला दरिन्दगी के बाद लगभग 24,167 मोपलों को सजा सुनाई गई। इनमें से 301 मोपला मुसलमानों को मृत्युदण्ड सुनाया गया और उक्त रिपोर्ट के तैयार होने के समय तक 191 को फांसी भी दी जा चुकी है।[51]

सर शंकरन नायर इस सम्बन्ध में कहते हैं, 'यह सब हुआ गांधी और शौकत अली के केरल दौरे और खिलाफत आन्दोलन चलाने के कारण।' गांधी को हिन्दुओं की थोक में हत्या करने और अमानवीय अत्याचार करने वाले जिहादी मुसलमानों को 'धर्मभीरु मोपला' की संज्ञा देने में जरा भी हिचक नहीं हुई। इस पर टिप्पणी करते हुए शंकरन नायर ने कहा, 'इसके दो उत्तर हो सकते हैं। पहला और शायद ज्यादा सम्भाव्य उत्तर यही है कि गांधी के भीतर के राजनेता ने उसके भीतर के मसीहा को चुप करा दिया था। वह किसी भी कीमत पर इस हिन्दू–मुस्लिम समझौते को कायम रखना चाहता था। दूसरा कारण यही हो सकता है कि गांधी सचमुच मानने लगा था कि अपने समस्त अत्याचारों समेत मजहबी अराजकता उस 'शैतानी' ब्रिटिश हुकूमत के अधीन कानून और व्यवस्था–सम्पन्न शासन से अच्छा है।'[52]

केरल में हिन्दुओं पर हुए इस मोपला अत्याचार के परिणामों की चर्चा भी गांधी ने बड़े हल्के–फुल्के अन्दाज में की, 'मोपला विद्रोह हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए परीक्षा की घड़ी है। क्या हिन्दुओं की सद्भावना उस पर पड़े इस दबाव को सहन कर सकेगी? क्या मुसलमान अपने हृदयों के अन्तरतम भागों में झांककर मोपलों के इस व्यवहार को सही ठहरा पाएंगे? समय ही सच्चाई दिखा पाएगा। जबर्दस्ती की मान्यता हिन्दुओं की दोस्ती का सुबूत नहीं हो सकता। कट्टरता के इस विस्फोट के बावजूद हिन्दुओं में अपने धर्म की रक्षा कर सकने का आत्मविश्वास होना चाहिए। मोपलों के जुनून की मुसलमानों द्वारा सिर्फ जबानी आलोचना मुसलमानों की दोस्ती का कोई सुबूत नहीं है। जबर्दस्ती धर्मान्तरण और लूटपाट के मोपला व्यवहार को लेकर मुसलमानों को सच्ची लज्जा और अपमान की अनुभूति होनी चाहिए और चुपचाप व प्रभावशाली तरीके से इस हेतु काम करना चाहिए कि उनमें से कट्टरतम लोगों के लिए भी ऐसे कृत्य असम्भव हो जाएं।''

कुछ महीनों बाद मद्रास में एक विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए गांधी ने कहा, 'मुझे यह मालूम है कि हमारे मोपला भाई, जो इतने सालों से अनुशासनहीन है, अब पागल हो गए हैं। मुझे यह भी मालूम है कि उन्होंने खिलाफत और अपने देश के विरुद्ध पाप किया है। आज गम्भीर रूप से भड़काए जाने के बावजूद अहिंसक बने रहने की

जिम्मेदारी पूरे भारत पर है।[53] भारत के प्रति सहानुभूति रखने वाले मैनचेस्टर गार्डियन ने यह कहा, 'मालाबार के दंगों में एक उल्लेखनीय बात थी तुर्की निशानी लिए हुए हरे झण्डे का लहराया जाना और जिहादी नारे लगाना' अखबार ने यह भी बताया कि खिलाफत आन्दोलनकारी पूरी तरह मोपला के मुल्ला जमात की गिरफ्त में थे और उन्हीं के इशारों पर काम कर रहे थे। आनन–फानन मोपलों के जत्थे भी तैयार हो गए और इतना ही नहीं, ऐसे कुछ जत्थों की सभा को गांधी ने भी सम्बोधित किया।[54]

केरल में मोपला मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं के इस नरसंहार से हिन्दू समाज के एक बड़े भाग में तीव्र प्रतिक्रिया होने लगी थी। मदुरई पालिका निगम ने अपने अध्यक्ष को लिखकर शहर में अपने दौरे के उपलक्ष्य में गांधी के स्वागत में प्रस्ताव पारित करने के पूर्व निर्णय को दी गई अपनी पहले की स्वीकृति वापस ली। इसके पश्चात् निगम के 23 सदस्यों ने गांधी के मदुरई आगमन पर उनके स्वागत के लिए गठित समिति में हिस्सा लेने से इनकार कर दिया।[55]

सुभाष चन्द्र बोस की सोच इस बारे में कुछ ऐसी थी : 'हालांकि कुछ साल साथ रहने के बाद अली बन्धु महात्मा का साथ छोड़ चुके थे, मुझे नहीं लगता है कि हम उन्हें (यानी गांधी) को उन लोगों से सम्बन्ध रखने के लिए दोष दे सकते हैं। मेरी राय में असली गलती खिलाफत या अन्य राष्ट्रीय मुद्दों से जुड़ने में नहीं बल्कि पूरे देश में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से अलग एक खिलाफत समिति खड़ी करने में थी। इसका परिणाम यह हुआ कि जब (प्रथम विश्व युद्ध के बाद) नई तुर्की के नेता मुस्तफा कमाल पाशा ने तुर्की के सुल्तान को अपदस्थ कर खलीफा के पद को ही समाप्त कर दिया, तब खिलाफत के मुद्दे ने अपना अर्थ और महत्व ही खो दिया। खिलाफत संस्थानों के अधिकांश सदस्य पन्थीय, प्रतिक्रियावादी और ब्रिटिश–समर्थक संगठनों द्वारा आत्मसात कर लिए गए। यदि अलग से खिलाफत समितियां न गठित की गई होती और खिलाफत के हिमायती सभी मुसलमानों को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होने के लिए मनाया जाता, तो खिलाफत के मुद्दे के समाप्त होने पर वे कांग्रेस द्वारा आत्मसात कर लिए गए होते।'

बोस ने आगे कहा, 'केरल के मोपले मुसलमानों के एक समुदाय हैं। उनका उपद्रव हिन्दुओं के विरुद्ध था। लेकिन यह सरकार पर भी एक हमला था। फिर भी, उसकी घटनाओं से काफी परेशानी और अपमान फैला है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हिन्दू–मुस्लिम एकता को शिथिल करने वाली पहली घटना है।' बोस ने पुनः जोर देकर कहा, 'भारत की राजनीति में खिलाफत के मुद्दे का समावेश दुर्भाग्यपूर्ण था। यदि खिलाफत करने वाले मुसलमान एक अलग संगठन न बनाकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होते तो परिणाम उतने अवांछनीय न होते।'[56]

यद्यपि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने यह नहीं कहा कि खिलाफत मूलतः एक विदेशी निष्ठा वाली मुहिम है, और यह भी नहीं कहा कि उसका भारतीय राष्ट्रवाद से कुछ लेना–देना नहीं है, लेकिन वह इतना तो देख सकते थे कि उसके परिणाम काफी अच्छे नहीं थे।[57]

लेकिन मोपलों द्वारा फैलाए गए आतंक के बारे में नेहरू का जो दृष्टिकोण था, वह सचमुच तथ्यों से रहित और जान–बूझकर भ्रामक था। केरल के हिन्दुओं पर मोपला मुसलमानों के अत्याचार के बारे में नेहरू की टिप्पणियों की बानगी देखिये, 'विभिन्न समुदायों के साम्प्रदायिकतावादी और ज्यादातर राजनीतिक प्रतिक्रियावादी असहयोग और 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' को मिले जबर्दस्त समर्थन के कारण शान्त रहने को बाध्य हुए थे। वे अब अपने अवकाश से उबरकर सामने आने लगे। खुफिया सेवा के लोग और साम्प्रदायिक तनाव फैलाकर सरकार को खुश करने की मंशा रखने वाले लोग इसी तर्ज पर काम करने लगे। मोपला उपद्रव और उसका क्रूर दमन दोनों ही बहुत बुरे थे। बन्द मालवाहक रेलगाड़ी के डिब्बों में मोपला कैदियों को जलने के लिए छोड़ा गया। साम्प्रदायिक वैमनस्य को उकसाने वालों को इससे एक और मौका मिल गया।'[58]

इस तरह नेहरू ने भारत की अगली पीढ़ी के 'सफल' इतिहासकारों/समाज शास्त्रियों और विशेषकर 'सेकुलर' नेताओं के लिए जमीन तैयार की। और यह जमीन है मुसलमानों द्वारा की गई हिंसा/आतंक के बारे में सच बिलकुल न बोलना और उसके विषय में तर्क विहीन बातें फैलाकर सभी को भ्रमित करना।

यहां हम बोस और नेहरू के विपरीत दृष्टिकोणों पर नजर डाल सकते हैं। दोनों को हालांकि वामपन्थी खेमे का समझा जाता था, लेकिन पैन–इस्लामवाद और इस्लामी आतंकवाद को लेकर दोनों की समझ एक दूसरे के विपरीत थी। बोस ने साफ कहा, 'मैं विश्वास नहीं कर पा रहा हूं कि नेहरू केरल के हिन्दुओं के विरुद्ध मोपलों के अत्याचारों और संगठित हिंसा का दमन करने के लिए औपनिवेशिक शासन की भूमिका की आलोचना कर रहे हैं। 2,500 हिन्दू जबरन मुसलमान बनाए गए थे और अनेक हिन्दू औरतों का बलात्कार भी हुआ। लोगों की सम्पत्ति लूटी और जलायी गई थी और संचार व यातायात प्रणाली की भी काफी क्षति हुई। यह सही है कि ब्रिटिश हुकूमत ने केरल के असहाय हिन्दुओं की रक्षा करने के लिए इस मोपला उद्राव को 'निर्दयतापूर्वक' कुचला। अधिक विलम्ब से केरल के हिन्दुओं का तो नाश ही होता।'

यह भी कहा गया कि नेहरू आततायी हमलावरों और उनके शिकार लोगों को एक ही श्रेणी में रखते हैं। वे खिलाफत आन्दोलन में शामिल अपने देश से भिन्न भूमि के प्रति वफादारी के मुद्दे को भी ढक रहे हैं। नेहरू ने आगे क्या कहा, 'यह देखना भी महत्वपूर्ण है। 'साम्प्रदायिक तनाव के कारण इतने वर्ष असहयोग के कारण नेपथ्य में धकेले गए मुस्लिम राजनीतिक प्रतिक्रियावादी अब उबरकर सामने आए। इसमें ब्रिटिश सरकार ने भी उनका साथ दिया।' नेहरू यहां सबसे महत्वपूर्ण तथ्य को पूरी तरह छिपाते हैं कि खिलाफत जैसे इस्लामिक मजहबी मुद्दे को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसे कथित सेकुलर संगठन ने ही एक राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में प्रस्तुत किया था।[59]

और यही नेहरूवादी 'दर्शन' स्वतन्त्र भारत में 'सेकुलर' इतिहासकारों को प्रेरित किए जा रहा है। इतिहासकार बिपिन चन्द्र भी इसी नेहरूवादी लीक का अनुसरण करते हैं। साम्प्रदायिकता पर अपनी पुस्तक, जिसका खूब प्रचार किया गया है, बिपिन चन्द्र वही करते हैं जो नेहरू ने किया – यानी केरल के मोपलों द्वारा हिन्दुओं पर किए गए अत्याचार का कुछ भी उल्लेख नहीं करना। मौलाना आजाद की पुस्तक *इण्डिया विन्स फ्रीडम* में तो खैर इस मोपला अत्याचार काण्ड का कहीं भी उल्लेख नहीं है। मौलाना आजाद की किताब तो इस प्रकार के इनकारवाद का सबसे कुत्सित रूप है।[60]

वरिष्ठ (अब दिवंगत) मार्क्सवादी नेता ई.एम.एस. नम्बूदिरीपाद 'मोपला किसान वर्ग के साम्राज्यवाद–विरोधी और सामन्तवाद–विरोधी चरित्र' पर जोर देते हुए यह दावा करते रहे कि इस कारण वे 'राष्ट्रीय आन्दोलन के बुर्जुआ नेतृत्व द्वारा निर्धारित' अहिंसा पर ज्यादा देर टिके नहीं रह सकते थे। नम्बूदिरीपाद दावा करते हैं कि ये किसान किसी अहिंसक असहयोग आन्दोलन के लिए नहीं बल्कि 'सर्वहारा की असली सैन्य कार्रवाई' के लिए तैयार किए गए। लेकिन नम्बूदिरीपाद यह मानने को बाध्य हैं कि 'मजहबी कट्टरता' विद्यमान जरूर थी। जबर्दस्ती धर्मान्तरण की जितनी भी घटनाएं हुईं, उनके पीछे कोई और कारण नहीं था सिवा मजहबी कट्टरता के। इस सम्बन्ध में आर्य समाज के पण्डित ऋषि राम ने महत्त्वपूर्ण आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। ये आंकड़ें कुछ बढ़े–चढ़े हो सकते हैं, लेकिन वास्तविकता को असन्दिग्ध रूप से दर्शाते हैं। नम्बूदिरीपाद में कुछ बौद्धिक ईमानदारी तो थी, जो नेहरू और नेहरूवादी 'प्रगतिशील' इतिहासकारों में नहीं थी।[61]

भारत में खिलाफत आन्दोलन का प्रभाव और महत्व

निर्दोष हिन्दुओं के प्राणों की बलि के अलावा खिलाफत आन्दोलन ने विभिन्न स्तरों पर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अन्तर की तल्खी से पुष्टि की। मुसलमानों को अपने पैन–इस्लामी बन्धुत्व को मजबूत करने हेतु

प्रोत्साहित करना और इस प्रकार अपने हिन्दू पड़ोसियों से दूरी और बढ़ाने के लिए परोक्ष रूप से उकसाना गांधी की सबसे भयानक भूल थी। इस किस्म की आदिम ताकतों और प्रवृत्तियों से खेलने में जो खतरे निहित हैं, गांधी उन्हें भांपने में पूरी तरह असमर्थ निकले। आगे चलकार इसी भूल को गांधी ने और भी बड़े पैमाने पर दोहराया, जिसका परिणाम 1947 में भारत के विभाजन के रूप में सामने आया।

खिलाफत के और भी परिणाम हुए, जिसे लेकर तब के अन्य विचारकों और नेताओं ने काफी कुछ कहा। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कहा, 'सरकार के प्रति घृणा से लेकर अन्य सभी राजनीतिक विचारवालों, पन्थों और समुदायों के लिए भी घृणा के उत्पत्ति के रूप में परिवर्तन काफी तेज और व्यापक था।' बनर्जी ने इस सम्बन्ध में गांधी को भी उद्धृत करते हुए कहा, 'वे आपसी घृणा और हिंसा में उलझकर एक दूसरे से असहयोग कर रहे थे।' बनर्जी ने आगे स्पष्ट किया है, 'जनसाधारण में यह घृणा जो पहले ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भड़कायी गई, स्वाभाविक रूप से उन सभी लोगों के विरुद्ध घृणा में बदलते देर नहीं लगी जो एक भिन्न उपासना स्थल में प्रार्थना करते हैं। यह घृणा जातीय और मजहबी दंगों में परिणत हुई, जिसने हमारे हाल ही के इतिहास को काफी स्याह बनाया है। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि ये नेता आग से खेल रहे थे। लेकिन साम्प्रदायिक संघर्षों – जिसकी निन्दा हम सभी करते हैं – के मूल्यांकन में ऐतिहासिक न्याय के खातिर इसे लादने और बढ़ावा देने में हमें इस असहयोग आन्दोलन की भूमिका को नहीं भूलना चाहिए।' स्पष्ट है कि बनर्जी खिलाफत आन्दोलन के बारे में ही बात कर रहे हैं।[62]

सक्रिय राजनीति से महर्षि अरबिन्दो ने सन्यास ले लिया था लेकिन राजनीतिक यथार्थ पर उनकी पैन दृष्टि बनी हुई थी। उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा, 'मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि इन्होंने (यानी असहयोग के हिमायतियों ने) हिन्दू–मुस्लिम एकता का हौवा बना रखा है। यथार्थ की अनदेखी करने से कुछ नहीं मिलने वाला है। किसी न किसी दिन मुसलमानों से हिन्दुओं को लड़ना होगा और हिन्दुओं को उसकी तैयारी करनी होगी। हिन्दू–मुस्लिम एकता का अर्थ हिन्दुओं का दमन नहीं हो सकता। हर बार हिन्दुओं की कोमलता के कारण उन्हें ही झुकना पड़ा है। सर्वोत्तम उपाय होगा हिन्दुओं को संगठित करना। इससे हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रश्न अपने आप सुलझ जाएगा। अन्यथा हम एक भ्रामक आत्मसन्तुष्टि में पड़े रहेंगे कि हमने समस्या का समाधान कर लिया है जबकि हमने उसे केवल टाला है।'[63]

नेइमेइजर का कहना है कि खिलाफत आन्दोलन ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने का काम किया। 'पहले तो इस आन्दोलन ने मुसलमानों को यह एहसास करवाया

कि सांसारिक सत्ता खोना उनके लिए क्या मायने रखता है? दूसरा, इस आन्दोलन में शामिल होने से मुसलमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी लिप्त हुए और उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि उन्हें अन्य राष्ट्रों से बराबरी का व्यवहार करना होगा। फिर भी, खिलाफत आन्दोलन ज्यादातर एक साम्प्रदायिक आन्दोलन रहा। उसकी विफलता ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता और उसके पीछे मुस्लिम राष्ट्रवाद को ही बढ़ावा दिया।'

नेइमेइजर का आगे कहना है कि 'खिलाफत आन्दोलन में तुर्की के मुसलमानों को छोड़ भारत में रह रहे मुसलमानों ने सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।' इसका कारण वे 'भारतीय राष्ट्रवाद को लेकर भारत के मुसलमानों की असन्तोषजनक स्थिति' बताते हैं, जिससे वे पैन–इस्लाम की ओर खींचे गए।

'किन्तु मुस्लिम लीग के नेता 1919 से 1924 के बीच की घटनाओं से इस निष्कर्ष पर जरूर पहुंचे होंगे कि भारत के मुस्लिम जनसमुदाय पर अपनी पकड़ रखने के लिए उन्हें इस्लाम के प्रति जज्बातों को भड़काना जरूरी था। लेकिन इससे मुसलमानों में जुनून के साथ दूसरे पन्थों के लिए नफरत तो बढ़ने ही वाली थी। मुस्लिम राष्ट्रवाद के लिए पथ तैयार करने के साथ खिलाफत आन्दोलन भविष्य की ओर इंगित तो कर रहा था लेकिन उसके कुरूप पहलुओं को भी साफ दर्शा रहा था।'[64]

देशेतर निष्ठा की इस मुहिम ने, वह भी एक इस्लामिक मजहबी और नितान्त अनावश्यक उद्देश्य के लिएए भारत में रह रहे मुसलमानों पर गैर–साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद के थोड़े–बहुत प्रभाव को भी धोकर रख दिया।[65] और जैसा कि हम देख रहे हैं, उस खिलाफत आन्दोलन के सौ साल बाद भी भारत में ज्यादातर 'सेकुलर' मुस्लिम राजनीति इस्लामी उम्मा के हितों, इस्राइल–फिलस्तीनी मुद्दों या गाजा क्षेत्र की घटनाओं के इर्द–गिर्द घूमती है। इसके अलावा इराक में आज आई.एस.आई.एस. द्वारा स्थापित इस नई खिलाफत में शरीक होने के लिए वहां चल पड़े भारत के मुसलमानों की खबरें ही देखने–सुनने को मिलती हैं।

इस सन्दर्भ में गिलमार्टिन का कहना है, 'राज्य समुदाय की नैतिक सीमाओं या उसके राजनीतिक स्वरूप का निर्धारण नहीं रहा, अतः व्यक्तियों ने जनजीवन में समुदाय का पुनर्गठन किया, जिसके लिए उन्होंने मुस्लिम प्रतीको का खूब इस्तेमाल किया।' साथ ही, खिलाफत के अनुभव ने भारतीय मुसलमानों को अन्य आन्दोलनों के संचालन की भी सीख दी।[66]

ईराक के यजीदी समुदाय के लोगों पर किए जा रहे अमानवीय अत्याचारों की दिल दहला देने वाली कहानियां और आई.एस.आई.एस. के कब्जे में मोसुल जैसे क्षेत्रों के

निवासियों की घोर दुर्दशा एक बार फिर यह प्रमाणित करती है कि मध्ययुगीन नियन्त्रणवादी और मजहबी संस्थान को पुनर्जीवित करने का कोई भी प्रयास आग से खेलने के समान है। उसकी लपटें तेजी से फैलकर अकल्पनीय पैमाने पर रक्तपात और विनाश कर सकती हैं।

इस्लाम में धर्मान्तरण और इस्लामीकरण के अन्य प्रयास

भारत में साम्प्रदायिक आन्दोलनों और सम्प्रदायों के आपसी सम्बन्धों पर कोई भी चर्चा इस्लाम द्वारा सनातन धर्म के अनुयाइयों के सामने प्रस्तुत चुनौती को समझे बिना अपूर्ण ही रहेगी। अपने एक शिष्य के किए गए प्रश्न के उत्तर में (13 जुलाई, 1923) महर्षि औरोबिन्दो ने काफी सटीक कहा, 'हिन्दू–मुस्लिम एकता का भी प्रश्न है, जिसे अहिंसा के पक्षधर अपने सिद्धान्त के आधार पर हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप उस मजहब के साथ सौहार्द्रपूर्वक रह सकते हैं, जो दूसरों के प्रति सहिष्णु है। लेकिन आप उस मजहब के साथ भला कैसे जी सकते हैं जिसका मूल सिद्धान्त ही यह है कि 'हम सहन नहीं करेंगे?' ऐसे लोगों के साथ आपकी एकता कैसे हो सकती है? हिन्दू–मुस्लिम एकता इस आधार पर तो बिल्कुल स्थापित नहीं हो सकती कि मुसलमान तो हिन्दुओं का धर्मान्तरण करते रहेंगे जबकि हिन्दू मुसलमानों का धर्म–परिवर्तन नहीं करेंगे। ऐसे आधार पर आप कोई एकता तो स्थापित नहीं कर सकते। मुसलमानों को अहानिकर बनाने का शायद यही उपाय है कि अपने मजहब पर उनकी निष्ठा को कम किया जाय।'[67]

इतिहासकारों के एक वर्ग ने कुछ मुस्लिम नेताओं के इस निर्णय को काफी उछाला है, जिसमें उक्त नेताओं ने खिलाफत आन्दोलन के शुरू होने के बाद अपने अनुयाइयों से इस्लामी मुद्दे को समर्थन दे रहे हिन्दुओं की भावनाओं का आदर करने हेतु गोहत्या न करने की अपील की। हिन्दुओं की भावना को आहत न करने का यह एक उदाहरण तो है, किन्तु हम यह पाते हैं कि गोहत्या इस्लामी कानून द्वारा अनुशंसित रिवाज नहीं है (क्योंकि अरबिस्तान में कोई गाय नहीं है)। गोहत्या इस्लामी हमलावरों और मजहबी नेताओं द्वारा पराजित किए गए हिन्दुओं को अपनी ही भूमि में अपमानित करने के लिए जान–बूझकर अपनाया गया एक कुकृत्य है।

इस वर्जना की आयु वैसे भी ज्यादा नहीं थी। और हिन्दू समाज पर चोट करने के कई प्रयास तो कभी नहीं रुके। केरल में बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण के अलावा अन्य हिन्दू–विरोधी गतिविधियां पूरे इस्लामी जुनून से जारी थे।

इस बारे में नम्बूदिरीपाद जैसे कम्यूनिस्ट की सफाई देखिये, 'यदि यह साम्प्रदायिक दंगा था, तो चार लाख हिन्दुओं में से ढाई हजार लोगों का जबर्दस्ती धर्मान्तरण बेहद ही कम है।'[68]

संसद में पूछे गए एक प्रश्न से इस कालावधि में धर्मान्तरण के एक विख्यात मामले का पता चलता है। प्रश्न था कि क्या सय्यद हसन या हुसैन, जो पण्डित मोतीलाल नेहरू के कहने पर खिलाफत प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य बना, नेहरू की बेटी के जबरन धर्मान्तरण का दोषी है?[69]

जमींदार नामक एक मुस्लिम अखबार ने भोपाल की बेगम साहिबा की घोषणा के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित किया। बेगम के इस ऐलान में कहा गया कि यदि शुद्धि सभा की गतिविधियां बन्द नहीं हुई, तो भोपाल की रियासत इस्लाम के प्रचार का काम शुरू करेगी।[70] यह भी बताया जाना चाहिए कि भोपाल की बेगम के कुछ वंशज स्वतन्त्र और धर्मनिरपेक्ष भारत में भी गैर–मुसलमानों को मुसलमान बनाकर इस खिलाफती परम्परा का पालन करते रहे। क्या हम अतीत की इस व्यावहारिक सीख को आत्मसात करेंगे?

1924 तक मुस्तफा कमाल अतातुर्क के तुर्की में पूरी दृढ़ता से सत्तारूढ़ होने के साथ कुछ रोचक घटनाक्रम हुए जो आज भी हमारे लिए महत्वपूर्ण सीख रखते हैं। ब्रिटेन और अनेक 'सेकुलर' सरकार वाले यूरोपीय देश, 'बहुसंस्कृतिवाद' की विफल नीति चलाने की कोशिशों में लगे अमेरिका और नेहरूवादी 'सेकुलरवाद' ढो रहे भारत के लिए तो खिलाफत आन्दोलन और उससे उत्पन्न सबक काफी महत्व रखते हैं। भारत (ब्रिटिश) सरकार के गृह विभाग द्वारा 14 मार्च, 1924 को खिलाफत समिति को लिखे गए पत्र में स्पष्ट किया गया कि अंगोरा जानेवाले प्रतिनिधिमण्डल में किसी गैर–मुस्लिम को शामिल नहीं किया जाएगा। इस प्रतिनिधिमण्डल के सदस्यों को सरकार को यह आश्वासन भी देना था कि वे उन राज्यों के राजनीतिक मामलों में कोई हिस्सा नहीं लेंगे जिनका वे दौरा करने वाले थे। इस हेतु हर सदस्य को दिए गए एक व्यक्तिगत प्रपत्र में अपने विस्तृत निजी कार्यक्रम की भी सूचना देनी थी।[71]

कई देशों के मुस्लिम नागरिक जिहाद में शरीक होने के लिए अपने अपने देशों से पलायन करते हैं और उन्हें रोकने में शायद उन देशों की सरकारों ने काफी देर कर दी है। लेकिन अभी भी सब कुछ नहीं लुटा है। अभी भी यदि 2014 में इस युद्ध में सभ्यता का पक्ष लेने वाले सभी देश और उनकी सरकारें आज से लगभाग सौ साल पहले औपनिवेशिक भारत के अधिकारियों के उपरोक्त निर्देशों का पालन करें, तो वे अपने

देशों से निकलने वाले जिहादियों की संख्या काफी कम कर सकते हैं। इस तरह की 'प्रेरणा' प्राप्त करने वाले लोग न केवल अपने निवास के देशों के लिए एक खतरा हैं बल्कि एक ऐसी पहचान के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं, जो उनका है ही नहीं, बल्कि उन पर लादा गया है।

खिलाफत आन्दोलन के निरर्थक होने के साथ उसे लेकर हम कुछ अलग तरह की प्रतिक्रियाएं भी देख सकते हैं। मुस्लिम समुदाय के एक भाग ने खिलाफत आन्दोलन के प्रति अपना विरोध भी जताया था। ऐसे विरोधियों में हैदराबाद का निजाम प्रमुख था। निजाम ने पहले तो अपनी रियासत में खिलाफत आन्दोलन से जुड़ी किसी भी गतिविधि पर रोक लगवायी, लेकिन खिलाफत के समाप्त किए जाने के बाद हैदराबाद के इसी निजाम ने अपदस्थ किए गए सुल्तान और खलीफा अब्दुल माजिद को मासिक 300 पाउण्ड स्टर्लिंग का पेन्शन आजीवन प्रदान करने का प्रस्ताव भी रखा, क्योंकि तुर्की का भूतपूर्व हो चुका सुल्तान अब 'दरिद्र' हो चुका था। औपनिवेशिक सरकार ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसी दौरान हैदराबाद में एक और रोचक घटना हुई, जिसका जायजा ब्रिटिश अधिकारियों ने लिया। खबर आयी कि हैदराबाद का निजाम ईदगाह में ईद के नमाज में शामिल हुआ, जो उसने पहले कभी नहीं किया था। इसे 'स्थानीय स्तर पर निजाम द्वारा खिलाफत को मान्यता' के रूप में देखा गया।[72]

इस लेख के समापन में एक और पहलू को रेखांकित करना उपयोगी होगा। मुसलमान अपनी कथित तकलीफों और तुर्की के पराजय और अपमान के नाम पर जहां उथल–पुथल मचाने को तैयार थे, उसी दौरान तुर्की के हाथों आर्मीनियायी समुदाय के लोगों के नरसंहार (1915) को लेकर किसी ने रत्ती–भर सहानुभूति व्यक्त नहीं की, यहां तक कि भारतीय राष्ट्रवादियों ने भी नहीं। भारत में उसके प्रवक्ता बिल्कुल नहीं थे ऐसी बात नहीं है,[73] लेकिन कुल–मिलाकर यहां के तथाकथित 'उदारवादियों' ने इसकी पूरी अनदेखी की।[74]

भारत में खिलाफत के अध्ययन को लेकर समस्या

इस्लामी जगत के इस उथल–पुथल और भारत पर उनके प्रभावों का यथार्थपरक अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा भारत की अपनी आन्तरिक राजनीति है। वर्तमान भारत में 'सेकुलरिज्म' नामक विचित्र विचारधारा इतिहास, समाज विज्ञान, शोध और मीडिया से जुड़े अध्ययनों पर बुरी तरह हावी है। अपेक्षा यही है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के पश्चात् घटनाओं और प्रवृत्तियों को देखने की हमारी सामूहिक क्षमता ज्यादा सन्तुलित होगी। इस्लामी आतंकवाद को लेकर तथाकथित 'विशेषज्ञ' आजकल सार्वजनिक रूप

से जिस प्रकार की टिप्पणियां कर रहे हैं, उससे साफ पता चलता है कि उनमें से अधिकांश तो इस्लामी आतंकवाद की हां में हां मिलाने वाले ही हैं। उनकी इन टिप्पणियों का उद्देश्य यही है कि देश के लोग और उसकी सरकार स्पष्ट दिखाई देने वाले खतरे के प्रति आंख मूंदे रहें। लेकिन एक और बात से हमें सावधान रहना होगा। अपने लम्बे इतिहास में हिन्दुओं ने भी बार–बार उथल–पुथलपूर्ण घटनाओं का पूर्वानुमान लगाने और तदानुसार कार्रवाई करने में अपनी घोर अक्षमता का ही परिचय दिया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण सिलसिला इतिहास में अनेकों बार दोहराया जा चुका है।

अन्त में

यह आलेख हमारे देश की 'नहीं देखने की आदत' को उजागर कर उसमें सुधार लाने का एक विनम्र प्रयास है। प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक सर वी.एस. नायपॉल भारतीयों की इस आदत का उल्लेख कर चुके हैं।[75]

कुछ बातें तब के औपनिवेशिक शासकों को जल्दी दिखाई देता था। उन्होंने यह देख लिया, 'असहयोग आन्दोलन को उसके जनक ने एक विघटनकारी मुस्लिम झुकाव प्रदान किया।' संयुक्त प्रान्त (यू.पी.) के तब के गवर्नर हारकोर्ट बटलर का मानना था, 'पूरब के देशों पर मजहब और शक्ति ही असर करते हैं। तुर्की में क्या चल रहा है, इसे लेकर मुझे ज्यादा समझ नहीं आता। एक व्यावहारिक नीति के रूप में पैन–इस्लामवाद में अधिक ऊर्जा दिखाई नहीं देती। यह किसी शक्ति से अधिक एक भावना है। एक सुधरा हुआ इस्लाम भी मुझे व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता। इस्लाम की ताकत उसकी कट्टरता ही है और सुधारों से उसका नाश होगा। लेकिन मुसलमान हमें काफी तकलीफ दे सकते हैं और मैं आशा करता हूं कि हम किसी समझौते पर पहुंच पाएंगे।'[76]

तेजी से बदल रही अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की वास्तविकता के चलते 1920 के दशक में भारत में चलाए गए इस खिलाफत आन्दोलन का अतार्किकता, विफलता और अन्त में घोर त्रासदी में परिवर्तित था होना अवश्यम्भावी थी। तुर्की अपनी मध्य–युगीन सल्तनत को उतार फेंक एक आधुनिक व्यवस्था को गले लगा चुका था। भारत में अन्तर–साम्प्रदायिक सम्बन्धों की जटिलता और उसके मुख्य राजनीतिक पात्रों के आपसी मतभेदों ने भी खिलाफत जैसे आन्दोलनों की निश्चित ही इतिश्री कर दी थी। गांधी के नेतृत्व में देश के राजनीतिक वर्ग ने एक अनिच्छुक गुट को राष्ट्रवादी खेमे में किसी तरह खींचने का सराहनीय प्रयास किया, लेकिन इतिहास की उनकी समझ त्रुटिपूर्ण थी। इसलिए खिलाफत जैसी चाल का उल्टा पड़ना और अन्त में एक सर्वांगीण त्रासदी का रूप लेना लाजमी था। आज सौ साल बाद भी दुनिया के

पैन–इस्लामी संगठन और विचार वाले अपने उस उद्देश्य में अडिग हैं, बाकी विश्व और मानवता के लिए भले ही वह कितना ही अनुचित और खतरनाक क्यों न हो। फिरंगी महल के अब्द–अल–बारी ने इस पूरे सन्दर्भ में ईमानदारी का प्रदर्शन करते हुए लिखा, 'मुसलमानों के लिए सच्चा होम–रूल (गृह शासन) तभी प्राप्त होगा जब शरिया लागू होगा।'[77] 1924 में कोहाट के हिन्दुओं पर इस्लामी कहर टूट पड़ा, जिसके बाद लाला लाजपत राय ने कहा, ''क्या कोहाट के हिन्दुओं को खिलाफत में हिस्सा लेने की सजा मिल रही है? क्या सीमावर्ती हिन्दुओं को अमीरचन्द बमवाल और अन्य हिन्दू नेताओं द्वारा खिलाफत आन्दोलन को दी गई सहायता क्या यह पुरस्कार मिल रहा है?' कोहाट की घटना से तो महात्मा गांधी भी बुरी तरह आहत हुए और उनका क्रन्दन इस तरह फूट पड़ा, 'मैंने हिन्दुओं को इस बात के लिए मनाया कि वे मुसलमानो के खिलाफत–रूपी मन्दिर बनाने में सहयोग करें, लेकिन आज मेरे ही मन्दिर मुसलमानों द्वारा तोड़े जा रहे हैं।'[78]

मिनॉल्ट ने कहा है, 'खिलाफत आन्दोलन के लिए समर्थन जुटाने और असहयोग की रणनीति के लिए उलेमा काफी कारगर थे, किन्तु उनका सरोकार इस्लाम की हिफाजत से था। इस मामले में वे असहयोग के उद्देश्यों से आगे निकल गए। यदि उम्मा के लिए जिहाद लाजमी है, तो फिर ताकत के इस्तेमाल में भला वे पीछे क्यों रहने वाले थे? मजहबी ढंग के न्याय और व्यवस्था को लेकर उलेमा द्वारा नियमित रूप से किए जानेवाले आह्वानों ने हिन्दुओं को भी ठहरकर सोचने पर विवश किया। क्या मुस्लिम नेता, खासकर उलेमा, भारत की स्वतन्त्रता को सचमुच समर्पित थे या फिर अपना प्रभाव–क्षेत्र बनाना चाहते थे?'

उलेमा के रुख को लेकर एक तर्क यह भी दिया जाता है कि वे भारत में मजहब और राज्यव्यवस्था के बीच मध्यकालीन सम्बन्धों की वापसी चाहते थे। अर्थात भारत की स्वतन्त्र सरकार अधिकांश शासकीय मामलों की देखरेख करें, लेकिन मध्ययुगीन सुल्तानों की भांति शिक्षा और अपने समुदाय के निजी कानूनों का शासन उलेमा के हाथ में छोड़ा जाना था। इस्लामी व्यवस्था और शरिया के अनुसार जीवन–पद्धति के निर्धारकों के रूप में उलेमा जिन्दगी के सभी पहलुओं में मुस्लिम समुदाय का मार्गदर्शन करती रहे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उलेमा की इस दृष्टि को लागू करने का मतलब था मजहबी आधार पर भारत का कानूनी विभाजन करवाना।[79] भारत के विभाजन के पूर्व और पश्चात् की राजनीति पर यह एक दुखद टिप्पणी है कि बहुत कम लोगों ने इस सच्चाई को स्वीकारा है।

अपनी मातृभूमि यानी मध्य–एशिया के एक हजार साल पुराने दार–उल–इस्लाम की सरजमीन में परास्त होने के बाद पैन–इस्लामी ताकतों को भारत–रूपी दार–उल–हर्ब की ओर मुड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। भारत में ब्रिटिश शासन के कायम होने के बाद यह देश उनके लिए दार–उल–इस्लाम नहीं रहा। इस्लामी ताकतों ने यहां के राष्ट्रीय नेताओं को भली–भांति भांप लिया और एक चीज उनकी समझ में आ गयी – भारत के नेतागण उनके दबाव में आ सकते थे और अन्तर–सामुदायिक साझेपन के दुष्प्राप्य उद्देश्यों के लिए एक पन्थनिरपेक्ष उप–निवेश विरोधी राष्ट्रीय मुहिम के मूलभूत सिद्धान्तों से भी समझौता करने को तैयार थे। फिर कोहाट (अफगानिस्तान) से कोलकाता (जिन्ना की सीधी कार्रवाई) और बाद में नोआखली तक भारत को तोड़ने के सुनियोजित कदमों का एक न रुकने वाला सिलसिला चल पड़ा।[80]

अभी भी कहानी खत्म नहीं हुई है। यदि समय रहते उन्हें रोका नहीं गया तो, ऐसे लोग और संगठन आज भी हैं जो वह सब दोहराने के लिए तत्पर हैं।

सन्दर्भ सूची

1. "द ट्रैजेडी ऑफ द अरब्स" इकॉनॉमिस्ट, 11 जुलाई, 2014।

2. अमेरिकी विदेश सचिव जॉन केरी ने वेल्स में नैटो शिखर सम्मेलन में कहा, 'आईएसआईएस को नष्ट करने की क्षमता हममें है, किन्तु इसमें दो से तीन साल लग सकते हैं।' (इण्डियन एक्स्प्रेस, 9 सितम्बर 2014)।

3. जॉन ब्यू : द ट्रैजैक साइकल, पृष्ठ 23–27 : न्यू स्टेट्समन 15–21 अगस्त, लन्दन।

4. द डेली मेल : 15 जनवरी, 1922।

5. द डेली मेल : 22 जनवरी 1922।

6. एलियत फ्रीडलैण्ड 'रीसन्स वाय द यूएस कोएलिशन अगेन्स्ट द आई.एस.आई.एस. इस ऐन एम्पटी शेल,' क्लैरियन प्रोजेक्ट, सितम्बर 18, 2014। गोपाल कृष्ण, 'खिलाफत मूवमेण्ट इन इण्डिया' (जर्नल ऑफ रॉयल एशियैटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, लन्दन, 1968) पृष्ठ 37–53।

7. नीरद सी. चौधरी; ऐन ऑटोबायोग्राफी ऑफ ऐन अन्नोन इण्डियन; पृष्ठ 487–493।

8. वही; पृष्ठ 493।

9. विद्या नायपॉल; एमंग द बिलीवर्स; ऐन इस्लामिक जर्नी (1979), इण्डिया : अ वूण्डेड सिविलिजेशन (पेंग्विन; 1980), बियॉण्ड बिलीफ; इस्लामिक एक्सकर्शन एमंग द कन्वर्टेड (विण्टेज, 1998)।

10. बिपिन चन्द्र पाल; नैशनालिटी एण्ड एम्पायर; पृष्ठ 362–364। अध्याय 18, पैन–इस्लामिस्म एण्ड इण्डियन नैशनलिसम; पृष्ठ 362–390; ठैकर एण्ड स्पिंक, कलकत्ता, 1916। लो प्राइस पाब्लिकेशन, दिल्ली 2002।

11. 'मेमोरैनण्डम ऑन इण्डियन मुस्लिम्स' भारत सकरार की 5 पृष्ठों का प्रपत्र है, सं. 1762–11–10–15–50, जिसकी तारीख 1913–1914 के आस–पास है (ब्राइनमोर जोन्स पुस्तकालय, हल विश्वविद्यालय)।

12. रमेश चन्द्र मजुमदार, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया। Vol.1, II, Calcutta, 1961,1962, Seal, Saradindu Mukherji, "Bengal Revolutionaries and the Muslims of Bengal. What went wrong and How ? ", pp, 112-126 in Journal of Bengal Studies, vol.1.No.1 4 Feb 2012.(Internet journal), P.N. Chopra, "Wahabi Movement" in R.C. Mazumdar, (Gen. ed) Part. I. The History and Culture of Indian People(Bombay) Rudra Prasad Chattopadhaya, Noborupe Titu Mir (Amrita Sharan Prakashan, Kolkata, n.d.) Insurgency of Titu Meer. A brief history of Wahabi Movement down to the death of Sayyid Ahmad Barelvi and Titu Meer(Readers Service, Kolkata, 2002), Anil Seal, ch.7 . The Muslim Breakway, pp. 298-340. The Emergence of Indian Nationalism Competition and Collaboration in the Later Nineteenth Century (Cambridge, 1971 9. Bipin Chandra Pal , Memories of My life and Times (1932); reprint, Calcutta 1973); Sottor Bochor: Atmajibani (Yugayatri Prakashak, Kolkata, 1362, B.E.); Nationality and Empire; A Running Study of Some Current Indian problems (Thacker and Spinks, Calcutta, Simla, 1916), Saradindu Mukherji, Bipin Chandra Pal -An Enduring Legacy" unpublished paper read at a seminar in New Delhi Dec 2001. Surendranath Banerjea., A Nation in Making : Being the Reminiscences of Fifty Years of Public Life. Oxford, 1927. Sir Sayed Ahmed on Present state of Indian Politics and Speeches 1982ed Original in 1888) 12. Banerjea, op. cit, pp, 304-305. B.R. Nanda, Pan-Islamism, Imperialism and Nationalism Delhi 1989.

13. जवाहरलाल नेहरू, *डिस्कवरी ऑफ इण्डिया*, पृष्ठ 293।

14. पाल, पृष्ठ 372–373, पृष्ठ 390।

15. बी.आर. नन्दा, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ लाला लाजपत राय, खण्ड–II*, मनोहर, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 144।

16. जवाहरलाल नेहरू, *आत्मकथा*, पृष्ठ 46।

17. लाजपत राय, *उद्धरण*, पृष्ठ 165।

18. अबुल कलाम आजाद, *इण्डिया विन्स फ्रीडम*; एम. मुजीब, *द इण्डियन मुस्लिम्स* (मुंशीरम मनोहरलाल), दिल्ली 2003, पृष्ठ 400।

19. गेल मिनॉल्ट, *द खिलाफत मूवमेण्ट, रिलिजियस सिम्बॉलिसम एण्ड पॉलिटिकल मोबिलाइजेशन इन इण्डिया* (ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रकाशन), दिल्ली, 1982।

20. मुजीब, वही, पृष्ठ 400।

21. *यंग इण्डिया*, 21 जुलाई 1920; महात्मा गांधी के संग्रहीत लेख, खण्ड 17, पृष्ठ 76–77।

22. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी; *अ नेशन इन द मेकिंग*, ऑक्सफर्ड, 1927।

23. होम पोलिटिकल; जून, 1920, गोपनीय संख्या 112।

24. होम पोलिटिकल; अगस्त 280 भाग–ब 1920।

25. 3 अप्रैल, 1920 को नगीना में अखिल भारतीय शीआ सम्मेलन ने ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा जताते हुए एक प्रस्ताव पारित किया; होम–पोलिटिकल जून 196–197, भाग–ब।

26. होम–पोलिटिकल 28 मार्च, 1920।

27. सर सय्यद अहमद *"खिलाफत और खलीफा"*, होम पोलिटिकल सामाया–ब।

28. होम–पोलिटिकल भारत सरकार, फाइल 45।

29. बिमल प्रसाद, *पाथवेज टू पार्टिशन*, खण्ड–II, दिल्ली 2000, पृष्ठ 156।

30. फ्रान्सिस रॉबिन्सन, सेपरेटिसम एमंग इण्डियन मुस्लिम्स, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृष्ठ 339, पृष्ठ 158।

31. प्रसाद, *उद्धरण*, पृष्ठ 155, 157 और 158।

32. जूडिथ ब्राउन, *गांधीस राइस टू पावर*, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

33. द मुस्लिम ल्यूमिनरीस, इस्लामाबाद, *उद्धरण*, पृष्ठ 1988।

34. खिलाफतियों का लन्दन में सक्रिय शाखा थी।

35. विदेश और राजनीतिक विभाग, 1921, मई 29, भाग–ब।

36. पश्चिमोत्तर प्रान्त के मुख्य आयुक्त ए.के. ग्राण्ट द्वारा भारत सरकार के विदेश सचिव एच. आर.सी. डॉब्स को 13 मार्च 1920 को लिखा गया पत्र।

37. बॉम्बे गोपनीय पत्र, 1920, खण्ड 18 में पृष्ठ 1107 और पृष्ठ 80–81

38. MGCW- Vol- X1X, पृष्ठ 254।

39. *यंग इण्डिया*, जून 2, 1921, खण्ड 20, पृष्ठ 291।

40. *यंग इण्डिया*, जून 8, 1921, खण्ड 20।

41. बंगाल सरकार गृह विभाग 185/1925

42. एम. शाह *'बंगाल मुस्लिम्स एण्ड द वर्ल्ड ऑफ इस्लाम'*; पृष्ठ 107; आर. अहमद, अण्डर्स्टैण्डिंग द बंगाल मुस्लिम्स, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001।

43. एफ.आर. रिपोर्ट होम पोलिटिकल, गोपनीय, भाग 1, क्रं 185, 1925

44. गृह राजनीतिक क्रं 93/40/22 अगस्त 1924।

45. शाह, उद्धरण, पृष्ठ 108।

46. मिनॉल्ट, उद्धरण, 146।

47. *मेमोरैण्डम इण्डियन मुस्लिम्स*, उद्धरण पृष्ठ. 2; आर.ई. मिल्लर, मापिला मुस्लिम्स ऑफ केरला, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001; पृ. 201–2।

48. *मैनचेस्टर गार्डियन*, सितम्बर 1, 1921 – दिसम्बर 12, 1921।

49. मिनॉल्ट, उद्धरण

50. बी.आर. नन्दा, गांधी, *पैन–इस्लामिसम, इम्पीरियलिसम एण्ड नैशनलिसम* (ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली), पृष्ठ 311–21; *गांधी एण्ड हिस क्रिटिक्स*, (ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985), मिनॉल्ट, वुड, *पेसण्ट रिवोल्ट – ऐन इण्टरप्रेटेशन ऑफ मोपला वायलेन्स*; के.एम. पणिक्कर (ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001)।

51. गृह राजनीतिक विभाग फाइल क्रमांक 129/iv/1923।

52. जे.एफ.सी. फुलर, अयर और स्पॉटिसवुड, लन्दन, MCMXXX1, पृष्ठ 169–170।

53. सी.डबल्यू.एम.जी. खण्ड–21, द हिन्दू 16 सितम्बर, 1921, खण्ड–21।

54. मैनचेस्टर गार्डियन, 25 अगस्त, 1921।

55. गृह राजनीतिक विभाग 1925 का 185।

56. शिशिर के. बोस और सुगता बोस; *सुभाष चन्द्र बोस : द इण्डियन स्ट्रगल*, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996; पृष्ठ 67–68, 69, 78।

57. शारदेन्दु मुखर्जी, *"नेताजीस लेगसी"*, पृष्ठ 38–39, नेताजी सुभाष स्मृति सम्भाषण, आजाद हिन्द फौज स्मारक न्यास, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 39।

58. नेहरू, *आत्मकथा*, पृष्ठ 86–87।

59. शारदेन्दु मुखर्जी, *"नेताजीस लेगसी"*, उद्धरण, पृष्ठ 39–40

60. बिपिन चन्द्र, *कम्यूनलिसम इन मॉडर्न इण्डिया* (संशोधित संस्करण), हर–आनन्द, नई दिल्ली, 2008।

61. ई.एम.एस. नम्बूदिरिपाद, *केरला सोसायटी एण्ड पॉलिटिक्स, अ हिस्टॉरिकल सर्वे*, नेशनल बुक सेण्टर, दिल्ली, 1984, पृष्ठ 114–124। द मैनचेस्टर गार्डियन, 18 फरवरी, 1922।

62. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, उद्धरण, पृष्ठ 302।

63. सीताराम गोयल, *मुस्लिम सेपरेटिसम, कॉसेस एण्ड कॉन्सिक्वेन्सेस, वॉइस ऑफ इण्डिया*, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 107।

64. ए.सी. नेइमेइजर, *द खिलाफत मूवमेण्ट इन इण्डिया*, 1919–1924। द हेग–मार्टिनस–निजहॉफ, 1972, पृष्ठ 9।

65. वही, पृष्ठ 48, 178।

66. डेविड गिल्मार्टिन, *सिविलिजेशन एण्ड मॉडर्निटी। नरेटिंग द क्रियेशन ऑफ पाकिस्तान* (योडा प्रेस, दिल्ली, 2014), पृष्ठ 134–135, 190, 254, 278।

67. ईवनिंग *टॉक्स विथ श्री अरबिन्दो*, पॉण्डिचेरी, 1974, पृष्ठ 48।

68. नम्बूदिरिपाद, उद्धरण।

69. गृह राजनीतिक विभाग, मई, 1920, 183।

70. गृह राजनीतिक विभाग, 1923 का फाइल 142।

71. गृह राजनीतिक विभाग, 10 मई, 1924 का फाइल क्रं 167।

72. हैदराबाद के रेसिडेण्ट से भारत सरकार के विदेश सचिव को तार; गृह राजनीतिक विभाग, संख्या 110/दिनांक 15 मई, 1924।

73. भारतीय आर्मीनियायी समुदाय द्वारा ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और अमेरिका को आर्मीनियायी नरसंहार को रोकने और आर्मीनियायी समुदाय के लोगों का मामला लीग ऑफ नेशन्स में उठाने की अपील। विदेश एवं राजनीतिक कार्रवाई, अक्टूबर, 1921, 162–171, भाग–ब।

74. शारदेन्दु मुखर्जी, *"ग्लैडस्टोन एण्ड इण्डिया"*; जुलाई 2009 का अप्रकाशित आलेख। शारदेन्दु मुखर्जी का लेख 'सबसर्वियेन्स टु पैन–इसलामिसम मस्ट एण्ड', द पायोनियर, 18 सितम्बर, 1992 भी देखिये।

75. वी.एस. नायपॉल, *हाफ अ लाइफ*, पिकेडर, लन्दन 2001, पृष्ठ 54।

76. गृह विभाग, गोपनीय पत्र भाग 1, सं 185/1925। संयुक्त प्रान्त के गवर्नर हारकोर्ट बटलर का आयरीन को लिखा गया 7 मार्च, 1922 का पत्र भी देखिये एफ.डी.डी.एफ.ए. (3)6/66, ब्राइनमोर जोन्स पुस्तकालय, हल विश्वविद्यालय।

77. रॉबिन्सन, पृष्ठ 192।

78. लाजपत राय, पृष्ठ 192–193।

79. मिनॉल्ट, उद्धरण, पृष्ठ 152–153 (पीटर हार्डी का उद्धरण, *पार्टनर्स इन फ्रीडम और ट्रू मुस्लिम्स*)।

80. इस तरह की राजनीति पर अधिक जानकारी के लिए देखिये शारदेन्दु मुखर्जी का *'अनऐण्टिसिपेटेड कैटास्ट्रफी : बंगाल इन द 1940*।' यह थियरी, कॉस्टैन्जो और जी. डुकोअर की पुस्तक *डीकॉलनाइजेशन एण्ड द स्ट्रगल फॉर नेशनल लिबरेशन इन इण्डिया; हिस्टॉरिकल, पॉलिटिकल, इकॉनॉमिक, रिलिजियस एण्ड आर्किटेक्चरल ऐस्पेक्ट* (पीटर लैंग, फ्रैंकफर्ट, 2014) में है।

2 नई खिलाफत और भारत

भारत एक ऐसा देश है जो सबसे ज्यादा आतंकवाद का शिकार रहा है। दुनिया के सबसे खतरनाक आतंकी संगठनों अलकायदा और तालिबान के वह निशाने पर है। ये खतरनाक उग्रवादी संगठन भारत में अपनी जड़ें जमाने की कोशिश कर रहे हैं। सिमी और आईएसआईएस जैसे आतंकी संगठनों के साथ हाथ मिलाकर वे धार्मिक उन्माद फैलाने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। ऐसे में भारत की नई सरकार की चिंता बढ़ना स्वाभाविक है। संसद में गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने दौलत इस्लामिया इराक और शाम पर देश में प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा कर आतंकवाद से लड़ने का मजबूत इरादा जाहिर किया है। गुवाहाटी में पुलिस महानिदेशकों के सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए गृहमन्त्री ने यह स्वीकार किया था कि इराक में स्थापित नई इस्लामी खिलाफत देश के मुस्लिम नौजवानों को गुमराह कर रही है। उन्होंने देश में इस नए अतिवादी इस्लामिक संगठन के बढ़ते हुए प्रभाव पर चिन्ता व्यक्त करते हुए देश की सुरक्षा एजेंसियों को यह भी निर्देश दिया था कि इस नई खिलाफत के इरादों पर कड़ी नजर रखने की जरूरत है।

गुप्तचर एजेंसियों ने बैंगलोर से नई इस्लामी खिलाफत के संदेशों को प्रसारित करने के आरोपों में पश्चिमी बंगाल के एक नौजवान मेहदी मशरूर विश्वास को बैंगलोर से गिरफ्तार किया था। यह व्यक्ति गत दो वर्षों से सोशल मीडिया पर इराक में स्थापित हुए इस इस्लामी आतंकवादी संगठन का प्रचार कर रहा था, मगर हमारी सुरक्षा एजेंसियां इससे बेखबर थी। नई खिलाफत के पक्ष में विश्वभर में सोशल मीडिया पर जहरीला प्रचार करने वाले इस नौजवान का पता एक ब्रिटिश चैनल ने लगाया था। इसके बाद हमारी सुरक्षा एजेंसियों की नींद खुली और उन्होंने इस देशद्रोही का पता लगाने के लिए प्रयास शुरू किया। पश्चिम बंगाल का यह मूल निवासी गत 3 वर्ष से बैंगलोर की एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में मोटे वेतन पर काम कर रहा था। इसकी देशद्रोही गतिविधियों के बारे में इसके सहयोगी पूरी तरह से अन्धेरे में थे। इसका परिवार पश्चिम बंगाल में रह रहा है और पिता पश्चिम बंगाल सरकार के कर्मचारी थे।

खिलाफत का नया इस्लामी साम्राज्य, जिसमें भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, नेपाल और श्रीलंका भी शामिल हैं। सौजन्य : मेल टुडे, 1 जुलाई, 2014

इन दिनों वह सेवानिवृत्त होने के बाद होम्योपैथिक डॉक्टर के रूप में दुकान चला रहे हैं। गुप्तचर एजेंसियां इससे पूछताछ कर रही है। खास बात यह है कि इसे अपने किए पर कोई पछतावा भी नहीं है, क्योंकि वह इसे इस्लामी जिहाद का अंग मानता है। उसका यह कहना है कि भारतीय मुसलमान डरपोक हैं, इसलिए वह शस्त्र जिहाद में भाग लेने से डरते हैं। कहा जाता है कि इसने 30 हजार से अधिक ट्वीट का प्रसारण किया है जो कि अंग्रेजी, अरबी, फारसी, लेबनेटिक अरबी और कुर्दिश भाषा में है। इनमें से कुछ भाषाओं के जानकार क्योंकि देश में उपलब्ध नहीं है इसलिए गुप्तचर एजेन्सियां इस बात का पता नहीं लगा पाई है कि इन ट्वीट द्वारा इस नई इस्लामी खिलाफत ने कैसे सन्देश विश्वभर में प्रसारित करवाये थे। खास बात यह है कि इस व्यक्ति की गिरफ्तारी के बावजूद भारत में 30 के करीब भारतीय भाषाओं में ऐसे वेबसाइट चलाए जा रहे हैं, जिनके द्वारा भारत के युवकों को जिहाद में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। देश की सुरक्षा एजेंसियां लाख प्रयास करने के बावजूद इस बात का पता लगाने में विफल रही है कि इस नए इस्लामी संगठन का प्रचार करने वाले कौन लोग हैं? सुरक्षा एजेंसियों को ख्याल है कि मेहदी मशरूर विश्वास का सम्बन्ध महाराष्ट्र में कल्याण के रहने वाले आरिफ मजीद से भी रहा है। मजीद महाराष्ट्र के उन चार नौजवानों में शामिल है जोकि नई खिलाफत के सोशल मीडिया में प्रचार से प्रभावित होकर इस्लामी जिहाद में भाग लेने के लिए भारत से इराक गए थे। यह व्यक्ति जिहादियों की ओर से सीरिया में लड़ा था। युद्ध में घायल होने के बाद

आई.एस.आई.एस. भारत में अपने पैर पसार रहा है। सौजन्य : मेल टुडे, 1 जुलाई, 2014

यह वहां से तुर्की चला गया और वहां से उसने अपने परिवारजनों से सम्पर्क किया और यह इच्छा व्यक्त की कि वह भारत वापस आना चाहता है। भारत सरकार ने उसकी वापसी की व्यवस्था की और देश में आने के बाद उसे गुप्तचर एजेंसियों ने अपनी हिरासत में ले लिया। लाख प्रयास करने के बावजूद गुप्तचर एजेंसियां इस युवक से कोई महत्वपूर्ण जानकारी उगलवाने में सफल नहीं हुई है। सुरक्षा एजेन्सियों का ख्याल है कि किसी योजना के तहत इसे नई इस्लामी खिलाफत ने भारत भिजवाया है ताकि वह यहां से और मुसलमान युवकों को भर्ती करके इराक भिजवाए। गुप्तचर एजेन्सियों ने इसके जानकार लोगों से भी पूछताछ की है। मगर वे इस बात का पता नहीं लगा पाई कि इसके लिए पासपोर्ट और इराक जाने के लिए धन की व्यवस्था किसने की थी। किसने उसको उमरा अदा करने की आड़ में इराक भिजवाया था। पिछले कुछ महीनों से यह शातिर नौजवान उससे पूछताछ करने वाली एजेंसियों को एक–दूसरे के विरोधी जानकारी देकर गुमराह करने का प्रयास कर रहा है।

इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि दौलत इस्लामिया की नई खिलाफत हो या अलकायदा का खूनी संगठन, दोनों देशभर में अपने पैर पसार चुके हैं। इनके नजदीकी सम्बन्ध अनेक उग्रवादी संगठनों से हैं। देश में कुछ देशद्रोही ऐसे जरूर हैं जोकि इन आतंकवादी संगठनों के सम्पर्क में है। इन संगठनों का मकड़जाल कश्मीर, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, तेलंगना, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर भारत में फैला हुआ है। बड़ी अजीब बात है कि देश की गुप्तचर एजेंसियां इन देशद्रोही तत्वों की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों से बेखबर हैं। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि देशभर में फैली हुई गुप्तचर एजेंसियों के बीच सामंजस्य का नितान्त अभाव है। वे भाई–भतीजावाद और भ्रष्टाचार के जाल में उलझी हुई हैं। कई लेखक एवं

खोजी पत्रकार इन गुप्तचर एजेन्सियां में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में अनेक पुस्तकें लिख चुके हैं, मगर सरकार के कान पर आज तक जूं तक नहीं रेंगी। इन गुप्तचर एजेन्सियों के सूचना तंत्र को सुधारने का कभी गम्भीरता से प्रयास नहीं किया गया। केन्द्र और राज्य सरकारों के गुप्तचर संगठनों पर हर वर्ष देश के कर दाताओं के खून–पसीने की कमाई का 10 हजार करोड़ रूपये खर्च कर दिया जाता है। मगर आज तक ये गुप्तचर संगठन देश दुश्मनों के खूनी इरादों का पूर्व सुराग देने में विफल रहे हैं। हर बार उग्रवादी जहां उनका मन हो वहां वो चोट करते हैं और हम अपने प्रियजनों के शवों को बेबसी से निहारते रह जाते हैं।

जम्मू–कश्मीर के कोर कमाण्डर लेफ्टिनेण्ट जनरल सुब्रत साहा ने जम्मू–कश्मीर में युवकों द्वारा इराक में स्थापित नई खिलाफत के झण्डे लेकर प्रदर्शन करने की घटनाओं पर गहरी चिन्ता व्यक्त की है। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि जिहादियों की ओर से जिस तरह से नकाब लगाकर भारत विरोधी नारे लगाए जा रहे हैं उससे देश के लिए खतरा निश्चित रूप से बढ़ गया है। दूसरी ओर जम्मू–कश्मीर के मुख्यमन्त्री फारूक अब्दुल्ला ने इन देशद्रोही प्रदर्शनों को जनता से नजरअन्दाज करने की अपील की है। उनका कहना है कि कुछ युवक इस तरह की मुर्खतापूर्ण हरकतें कर रहे हैं। इसलिए सरकार और जनता को इस पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत नहीं है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि गत एक वर्ष से कश्मीर घाटी में इराक में स्थापित दौलत इस्लामिया इराक एवं सीरिया (आईएसआईएस) के झण्डे हाथ में लेकर निरन्तर प्रदर्शन करते आ रहे हैं। हैरानी की बात है कि राज्य सरकार इन प्रदर्शनों को नजरअन्दाज करती आ रही है। अभी तक पुलिस ने किसी भी प्रदर्शनकारी को गिरफ्तार करने की जरूरत तक नहीं समझी। इन प्रदर्शनों का सिलसिला ईद उल फितर से श्रीनगर में शुरू हुआ था। जब पहली बार कुछ युवकों ने भारत विरोधी नारे लगाते हुए नई खिलाफत के काले झण्डे हाथ में लेकर उग्र प्रदर्शन किया था। इसके बाद अब तक ऐसे चार प्रदर्शन हो चुके हैं। मगर सरकार इसको गम्भीरता से नहीं ले रही है।

हाल में ही कश्मीर घाटी में एक नया आतंकवादी संगठन बना है जिसका नाम अंसार उल तौहीद है। जिसने खुलेआम इराक में स्थापित नई खिलाफत का समर्थन करने की घोषणा करते हुए अपनी वेबसाइट में देश के मुसलमान युवकों से अपील की है कि वे भारत को काफिरों की गुलामी से आजाद करवाने के लिए जिहाद में भागीदार बनें। इस नए संगठन ने मुसलमान युवकों को उकसाते हुए उनसे अपील की है कि वे मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, अहमद शाह अबदाली के पदचिह्नों पर चलते

हुए हिन्दुस्तान को काफिरों की गुलामी से मुक्त करवाएं। वे एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार लेकर जिहाद के मैदान में कूद पड़े। बताया जाता है कि यह वेबसाइट कर्नाटक में रहनेवाले एक 39 वर्षीय मौलवी सुल्तान अब्दुल कादिर इमार का है, जिसने लखनऊ के दारूल उलूम नदवा में शिक्षा प्राप्त की थी। बासद में यह व्यक्ति पाकिस्तान चला गया था और वह तहरीक–ए–तालिबान के नेताओं में बताया जाता था। कुछ महीने पूर्व वे पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के रास्ते से भारत में दाखिल हुआ है और उसने कश्मीरी युवकों को इस नए संगठन के लिए भर्ती करने का काम शुरू कर दिया है।

इस जिहादी ने हाल में ही एक नया ट्वीट जारी किया है जिसमें उसने कहा है, ''इराक व सीरिया की खाक से जो सदा बुलन्द हुई है उसको समक्ष रखते हुए हर मुसलमान का यह फर्ज है कि वह जिहाद में हिस्सा लेने के लिए अफगानिस्तान का रूख करे। ब्राह्मणों और गोपूजा करने वालों और दुनिया भर के काफिरों को यह बता दें कि भारतीय मुसलमान बुज़दिल नहीं हैं। वे इस्लाम को बुलन्दियों तक पहुंचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे सकते हैं।'' इस ट्वीट के साथ पाकिस्तान और अफगानिस्तान की सीमा पर स्थित उन गुप्त शिविरों के चित्र भी इस अपील के साथ पेश किए गए हैं, जिनमें भारत से आए जिहादियों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

आईएसआईएस की ओर से उर्दू, तमिल, मलयालम और अंग्रेजी में तीन वेबसाइट खोले गए हैं, जिनमें भारतीय मुसलमानों से अपील की गई है कि वे जिहाद के पुण्य कार्यों में बढ़–चढ़कर भाग लें और इस्लाम की रक्षा और मुसलमानों को काफिरों के जुल्मो–सितम से बचाने के लिए जिहाद के मैदान में कूद पड़ें। इस वेबसाइट के अनुसार आजमगढ़ के रहनेवाले शाहनवाज अहमद, मुम्बई के डॉ. अब्बु रशीद अहमद, बंगलौर के रहने वाले मोहम्मद साजिद और औरंगाबाद के रहने वाले मिर्जा सादाब बेग जिहाद में शामिल हो चुके हैं।

उल्लेखनीय बात यह है कि भारत को इस्लामी उग्रवादियों के बढ़ते हुए इस खतरे के बारे में देश की सुरक्षा एजेन्सियां गम्भीर नहीं हैं। इसलिए आज तक उन्होंने किसी भी युवक को गिरफ्तार नहीं किया है जो कि इस जिहाद में शामिल होने के लिए विदेश जा रहा हो और न ही उन लोगों का पता लगाने का प्रयास ही किया है जो कि भारत में इस जिहादी संगठन के लिए युवकों की भर्ती कर रहे हैं।

इसमें शक नहीं कि देश के अधिकांश उर्दू अखबार जानबूझकर इस जिहादी संगठन की गतिविधियों पर लीपा–पोती करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से यह प्रचार कर रहे हैं कि यह नई खिलाफत अमेरिका और इजरायल के इशारे पर बनाई गई है। इसका लक्ष्य

आई.एस.आई.एस. द्वारा प्रसारित वीडियो, जिसमें बंधक बनाए गए कुतुबी ईसाईयों के सिर काटे जाने का दृश्य दिखाया गया है। सौजन्य : मेल टुडे, 17 फरवरी, 2015

मुसलमानों को विभाजित करना है ताकि मुसलमान एकजुट होकर अमेरिका और इजरायल के बढ़ते हुए खतरे का सामना न कर पाएं। इन समाचार–पत्रों का यह आरोप है कि अमेरिका शिया और सुन्नी मुसलमानों को आपस में लड़वाना चाहता है। यही कारण है कि नए खलीफा इब्राहिम अल बगदादी जो कि कभी अलकायदा में शामिल था, अब अमेरिका के इशारे पर अपना एक अलग संगठन बनाकर शिया मुसलमानों को चुन–चुनकर अपने अत्याचारों का निशाना बना रहे हैं। हजारों वर्ष पुराने शियाओं के पवित्र स्थल बमों से ध्वस्त कर दिए गए हैं। इराक में स्थित खलीफा उमर और खलीफा फारूक के शासनकाल में बने 1,200 साल पुराने अनेक मकबरों को समरा, मोसल और इबनार में नई खिलाफत के सैनिकों ने डायनामाइट से नेस्तनाबूद कर दिया है। नए खलीफा इब्राहिम अल बगदादी को इससे भी संतोष नहीं हुआ। उन्होंने नजफ में स्थित हजरत अली और कर्बला में स्थित हजरत अब्बास और हसन के मकबरों का भी नामो–निशान मिटाने की घोषणा की है। खास बात यह है कि नए खलीफा की नजर में सऊदी अरब का शासक खानदान भी इस्लाम का सच्चा अनुयायी नहीं है। अपने एक हाल के वीडियो भाषण में उन्होंने यह धमकी दी है कि पवित्र काबा को काफिरों से मुक्त करवाया जाएगा, जिन्होंने उस पर जबरन कब्जा कर रखा है। शियाओं के सभी पवित्र स्थानों को मिट्‌टी में मिला दिया जाएगा। और उनके बच्चों को गुलाम बनाकर बाजारों में बेचा जाएगा।

उर्दू समाचार–पत्रों के इस प्रचार के बावजूद कि देश के मुसलमान इस नई खिलाफत से प्रभावित नहीं हो रहे हैं। मगर सच्चाई यह है कि सुन्नी मुसलमानों का एक वर्ग खिलाफत द्वारा जिहाद शुरू करने के अभियान से पूरी तरह से प्रभावित है और नए खलीफा इब्राहिम अल बगदादी के निर्देशों को गंभीरता से ले रहा है। दारूल उलूम नदवा लखनऊ के एक विख्यात अध्यापक सलमान नदवी, जो कि इस संस्था के

संस्थापक अली मियां के भतीजे हैं, ने यह घोषणा की है कि एक लाख सुन्नी भारतीय मुसलमानों को इराक पहुंचकर इस नई खिलाफत द्वारा छेड़े गए जिहाद में भाग लेना चाहिए। उन्होंने सउदी अरब के शाह को एक पत्र भी लिखा, जिसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इन जिहादियों के इराक जाने की व्यवस्था और उन्हें आधुनिक अस्त्र–शस्त्रों से लैस करने का काम सउदी अरब को करना चाहिए। यह बात दीगर है कि तीन महीने के बाद जब उन पर दबाव पड़ा तो उन्होंने अपना यह बयान वापस ले लिया।

अब भला शिया भी कैसे पीछे रहते? देश के दर्जन भर नगरों में अंजुमन हैदरी नामक शिया संगठन ने विशेष शिविर लगाए और शियाओं से यह अपील की गई कि वे नई खिलाफत के खिलाफ जिहाद में हिस्सा लेने के लिए और शियाओं के पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए जिहाद के मैदान में कूद पड़ें। दावा यह किया गया कि एक लाख शियाओं ने इराक जाने के लिए अपने नाम भी दर्ज करवाए हैं। इस संस्था ने इराक के दूतावास में दस हजार व्यक्तियों के, जिनमें महिलाएं भी शामिल थीं, उनके पासपोर्ट जमा करवाकर इराक सरकार से इन मुजाहिदियों को तुरन्त वीजा देने की मांग कर डाली।

इराक की नई खिलाफत से वहां पर बन्धक बनाई गईं केरल की 46 नर्सों को जब मुक्त किया गया तो नई खिलाफत को धन्यवाद देने के लिए चेन्नई में जामा मस्जिद के सामने दर्जनों मुस्लिम युवकों ने खिलाफत के काले झण्डे हाथ में लेकर प्रदर्शन कर डाला। हैरानी की बात यह है कि पुलिस ने किसी भी प्रदर्शनकारी को हिरासत में लेने की जरूरत नहीं समझी। इमाम से जरूर कुछ पूछताछ की गई।

इस्लामी जिहाद में भाग लेने के लिए गए भारतीय युवक

देश की सुरक्षा एजेन्सियां इस बात को तो स्वीकार करती हैं कि कई मुस्लिम युवक इराक में इस नई खिलाफत द्वारा शुरू की गई जिहादी जंग में भाग ले रहे हैं। सबसे पहले मुम्बई के

समीप मुम्ब्रा के चार मुस्लिम नौजवानों ने अपने परिवारों को पत्र भेजकर यह सूचित किया कि वे इस जिहाद में भागीदार बने हुए हैं। पुलिस ने इनके परिवारजनों से जब पूछताछ की तो पता चला कि ये चारों युवक इराक में तीर्थयात्रा करने के बहाने से वहां गए थे और इसके बाद जिहादी युद्ध में शामिल हो गए। दिलचस्प बात यह है कि एक ओर तो नरेन्द्र मोदी सरकार आतंकवाद के खिलाफ सख्त कदम उठाने का दावा करती है जबकि दूसरी ओर एक सरकारी प्रवक्ता ने यह कहा है कि यदि इराक के जिहाद में भाग लेने वाले युवक स्वदेश वापस लौटते हैं तो उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी। ताजा जानकारी के अनुसार आरिफ माजिद, अमन टंडेल, फहद शेख, शाहीन थंगल के परिवारजनों ने केन्द्रीय गृहमन्त्री राजनाथ सिंह से भेंट कर उनसे यह अनुरोध किया था कि वे इन युवकों को इराक से वापस लाने का प्रयास करे। समाचार के अनुसार इनमें से आरिफ माजिद नामक व्यक्ति युद्ध में भाग लेते हुए मारा गया है।

आरिफ माजिद

गृहमन्त्री राजनाथ सिंह ने भी इस नए आतंकी संगठन के कारण उत्पन्न खतरे पर लीपापोती करने का प्रयास किया है। उन्होंने कहा है कि भारतीय मुसलमान इस नई खिलाफत के खिलाफ हैं और वे जिहाद में भारी संख्या में शामिल नहीं होंगे। इसी तरह राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी और प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी भारतीय मुसलमानों को राष्ट्र भक्त होने का प्रमाणपत्र थमा दिया है।

सरकार द्वारा इस नए खतरे पर आंखें मूंद लेने के बावजूद सुरक्षा एजेन्सियाँ इस मामले में सतर्क हैं और उन्होंने दावा किया गया है कि 200 से लेकर 1,000 तक भारतीय युवक एवं युवतियां इराक के इस्लामी जिहाद में भाग ले रही हैं। आन्ध्र प्रदेश में करीमनगर की पुलिस ने 40 युवकों को हिरासत में लिया है। जो कि इराक में जिहाद में हिस्सा लेने के लिए वहां जा रहे थे। हाल में ही इस इराकी आतंकवादी संगठन ने अपना नाम बदलकर इस्लामिक स्टेट रख लिया है। इसकी ओर से भारत

जॉर्डन के पकड़े गए विमान चालक को जिन्दा जलाए जाने का दृश्य

अबू बकर अल बगदादी

की विभिन्न भाषाओं में वेबसाइट बनाए गए हैं, जिनमें भारतीय युवकों से जिहाद में हिस्सा लेने की अपील की गई है। अपील करने वाला एक कनाडावासी है, जिसे अब्बु मुस्लिम का नाम दिया गया है, उसे युद्ध में रॉकेट चलाते हुए दिखाया गया है। एक अन्य वीडियो उर्दू में है जिसमें शेख अदनानी भारतीय मुसलमानों से जिहाद में हिस्सा लेने की अपील करते हुए दिखाया गया है। नए खलीफा अबू बकर को धाराप्रवाह तमिल और मलयालम में भारतीय मुसलमानों से इस्लामी जिहाद में शामिल होने का आह्वान करते हुए दिखाया गया है। वेबसाइट पर उर्दू, हिन्दी एवं तमिल और मलयालम की कई पुस्तकें भी इस जिहाद के बारे में उपलब्ध हैं। भारतीय युवकों को उत्तेजित करने के लिए अब यू–ट्यूब पर बाबरी मस्जिद को गिराए जाने और साम्प्रदायिक दंगों के रोंगटे खड़े करने वाले चित्र भी डाले गए हैं।

नए आतंकवादी संगठन आईएसआईएस के पांव कश्मीर घाटी में भी फैल चुके हैं। इसकी पुष्टि दैनिक मेल टुडे (1 जुलाई, 2014) से होती है। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में दर्जनभर जिहादी संगठनों का एक संयुक्त मंच 'यूनाइटेड जिहाद काउंसिल' बनाया गया। इसके प्रमुख सैयद सलाउद्दीन ने दावा किया है कि कश्मीर के जिस हिस्से पर भारत ने जबरन कब्जा कर रखा है उसे इराक में स्थापित पान नामक इस्लामी जिहादी संगठन के जंगजुहों की मदद से जल्द आजाद करा लिया जाएगा। उन्होंने दावा किया कि अनेक आतंकवादी संगठनों जैसे हरकत–उल–अंसार, हिज्बुल–मुजाहिदीन, जमायत–उल–मुजाद्दीन, अल जहाद, अल बरक, अल बदर, उख्वान उल मुस्लिमीन, तहरीक–ए–मुजाहिदीन ने अपना नाता इस्लाम के नए खलीफा अबू बकर अल बगदादी और उसके संगठन दौलत इस्लामिया इराक और सीरिया से जोड़ने का फैसला किया है। उन्होंने कहा कि इन सभी जिहादी संगठनों का जाल भारतीय अधिकृत कश्मीर में भी फैला हुआ है। अगर कोई भी इस्लामी संगठन कश्मीरियों की आजादी की जिहाद में हमारा साथ देता है तो हम उनका स्वागत

करेंगे। हमारा एकमात्र लक्ष्य कश्मीर के मुसलमानों को काफिरों की गुलामी से आजाद करवाना है। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ जिस तरह से नरेन्द्र मोदी के साथ गांठने का प्रयास कर रहे हैं हम उनका डटकर विरोध करेंगे। उन्होंने मुजफराबाद में शहीद दिवस के अवसर पर आयोजित एक जनसभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि अब सारा इस्लामी जगत हमारे जिहाद में हमारा साथ बन गया है और हम कश्मीरियों की आजादी के बिना चैन नहीं लेंगे। उन्होंने कहा कि भारत–पाकिस्तान के बीच कश्मीर की समस्या के समाधान के लिए वार्ता हो चुकी है मगर उसका कोई नतीजा नहीं निकला। कश्मीर समस्या का एकमात्र हल जिहाद है। दुनियाभर के मुसलमानों को इस जिहाद में शामिल होकर भारत की गुलामी के शिकार कश्मीरियों की मुक्ति के लिए संघर्ष करना चाहिए।

दैनिक मुंसिफ (23 अक्टूबर, 2014) के अनुसार सिंकदराबाद रेलवे स्टेशन पर दो नौजवानों को पुलिस ने हिरासत में ले लिया है। कहा जाता है कि ये दोनों नौजवान जिहाद के लिए तेलंगाना के मुसलमानों को भर्ती करने के लिए महाराष्ट्र से आये थे। पुलिस के अनुसार 25 वर्षीय शाह मुद्दसर उमरखेड़ा का रहने वाला है जबकि 24 वर्षीय शहाब अहमद खान अंगोली जिला का रहने वाला है। तलाशी लेने के बाद इसके कब्जे से बम बनाने से सम्बन्धित दस्तावेज बरामद हुए हैं। पूछताछ के दौरान में इन दोनों नौजवानों ने बताया कि हैदराबाद के मुत्तसम बाल्लाह ने इंटरनेट से उनसे सम्पर्क किया था और उन्हें अफगानिस्तान जाकर नए खलीफा अबू बकर अल बगदादी के शिविर में भेजने का लालच दिया था। उन्होंने यह भी उल्लेख किया था कि उन्हें अफगानिस्तान जाने के लिए उन्हें वीजा के साथ–साथ आर्थिक सहायता भी दी जाएगी। इन दोनों नौजवानों ने बताया कि उनमें मद्दसर स्नातक है और वह सिमी का सक्रिय सदस्य रहा है। 2001 में सिमी पर प्रतिबन्ध लगाने के बाद वह इण्डियन माईनॉरिटी स्टूडेण्ट नामक संगठन में शामिल हो गया था जबकि दूसरे नौजवान शाहाबा के बारे में बताया गया है कि वह इण्डियन मुजाहिद्दीन के मीडिया इंचार्ज मंसूर अली पीरभाई का सहयोगी है। पुलिस के अनुसार ये दोनों सोशल साइट के द्वारा मुस्लिम नौजवानों में इसका प्रचार कर रहे थे। फेसबुक पर उनका परिचय पाकिस्तान के रहने वाले अब्बू सेफ और कामरान शाह से हुआ था। इन दोनों ने अफगानिस्तान के रहने वाले जाहिद अल हिंदी से सम्पर्क करने का निर्देश दिया था। जाहिद अल हिन्दी ने उन्हें कहा कि वह हैदराबाद जाकर मीर शौकत, समीर खां और मासद बाल्लाह से सम्पर्क स्थापित करे। ये दोनों उन्हें अफगानिस्तान जाकर जिहाद का प्रशिक्षण लेने की व्यवस्था कर देंगे। इस प्रशिक्षण को लेने के बाद वे भारत आकर देश में इस्लामी राज्य स्थापित करने के लिए जिहाद करें। इनके कब्जे से बीस हजार रूपये भी बरामद हुए

हैं। पुलिस के अनुसार बासदल्लह हैदराबाद के रहने वाले मौलाना अब्दुल अलीम इसलाही के पुत्र हैं, जिनका बड़ा भाई मुजाहिद सलीम आजमी गुजरात पुलिस के साथ हुई मुठभेड़ में मारा गया था। बताया जाता है कि जब गुजरात पुलिस इस आंतकवादी की गिफ्तारी के सिलसिले में हैदराबाद आई थी तो कुछ अन्य आतंकवादियों के साथ आजमी की पुलिसवालों के साथ झड़प हुई थी और उसमें वह मारा गया था।

संदर्भ सूची

1. राइज ऑफ आई.एस.आई.एस. द पायनियर, 20 जुलाई, 2014।
2. चौथी दुनिया, 11 अगस्त, 2014।
3. नई दुनिया, 22 सितम्बर, 2014।
4. मेल टुडे, 13 अगस्त, 2014।
5. द इंडियन एक्सप्रेस, 16 सितंबर, 2014।
6. नई दुनिया, 6 अक्टूबर, 2014।
7. मुंसिफ, 6 जुलाई, 2014।
8. मेल टुडे, 1 जुलाई, 2014।
9. हमारा समाज, 9 जुलाई, 2014।

3 नई खिलाफत का दर्शन

सीरिया में गत डेढ़ वर्षों से जो गृहयुद्ध चल रहा था अब उसने एक गम्भीर मोड़ ले लिया है। जिहादी आतंकवादी अब इराक में भी दाखिल हो गए हैं और उन्होंने इराक के प्रधानमंत्री नूरी अल–मलीकी को सत्ता से हटाने के लिए सशस्त्र संघर्ष तेज कर दिया है। इराक के कुछ हिस्से पर कब्जा करने के बाद दौलत इस्लामिया इराक एवं शाम (आई.एस.आई.एस.) नामक एक नई खिलाफत की घोषणा की गई है। जिसके तहत 5 जुलाई, 2014 को जारी एक वीडियो में उसके नेता अबू बकर अल बगदादी को खलीफा के रूप में मुस्लिम उम्मा को सम्बोधित करते हुए दिखाया गया है। मोहसिल की मस्जिद में खलीफा के वेष में अल बगदादी ने ये घोषणा की है कि चूंकि वह दुनियाभर के मुसलमानों का खलीफा है इसीलिए उसका आदेश मानना हर मुसलमान के लिए अनिवार्य है। इसके साथ ही इस नई खिलाफत का एक मानचित्र भी जारी किया गया है जिसमें विश्व के 73 देशों को इसका अंग बताया गया है। ये सभी देश किसी जमाने में उस्मानिया खिलाफत का अंग हुआ करते थे। ये देश एशिया, अफ्रीका और यूरोप में स्थित हैं। इनमें से 43 देश ऐसे हैं जिनमें इन दिनों इस्लामी शासन नहीं है। बगदादी ने अपना नया नामकरण खलीफा इब्राहिम के रूप में किया है और मुसलमानों से यह अपील की है कि वह नई खिलाफत के विजय अभियान में शामिल होने के लिए विश्वभर के देशों से सीरिया और इराक पहुंचे।

इस्लाम में उग्रवाद और आतंकवाद की पुरानी परम्परा है। ब्रिटेन के सुरक्षा विशेषज्ञ फ्रैंक गॉर्डनर के अनुसार नई उग्रवादी इस्लामी खिलाफत का झंडा काले रंग का है। जोकि कभी हजरत मोहम्मद का झंडा हुआ करता था। इस झंडे पर हजरत मोहम्मद की मोहर अंकित है। जिसमें लिखा गया है कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई अन्य ईश्वर नहीं है। इस तरह से नई खिलाफत ने संदेश देने का प्रयास किया है कि वही इस्लाम के असली उत्तराधिकारी हैं। इस नई इस्लामी खिलाफत की पृष्ठभूमि को ठीक से समझने के लिए इस बात पर विचार करना चाहिए कि खिलाफत के समापन के बाद 1924 में मिस्र में मुस्लिम ब्रदरहुड नामक एक जिहादी संगठन का उदय हुआ। जिससे

अलकायदा और अन्य उग्रवादी संगठनों ने बाद में प्रेरणा ली। यही संगठन इस नई खिलाफत के प्रेरणा स्रोत हैं। हालांकि न्यूयॉर्क टाइम्स का कहना है कि यह नई खिलाफत वहाबी सम्प्रदाय से प्रभावित है। इन दिनों वहाबियों की सउदी अरब में हुकूमत है। सलाफियों का कहना है कि मुस्लिम समाज की स्थापना के लिए यह जरूरी है कि गैर–मुसलमान देशों से जिहाद किया जाए। ताकि वहां पर इस्लामिक शासन की स्थापना की जा सके। आलोचकों का कहना है कि यह नया संगठन सुन्नी नहीं है। बल्कि खार्जियों का नया रूप है। मगर अब सउदी अरब का शासक वर्ग यह दावा करता है कि यह नया इस्लामी संगठन यहूदियों ने इस्लाम में विघटन करने के लिए स्थापित किया है। हाल में ही जॉर्डन की एक जेल से अबू मोहम्मद अल मकदसी को रिहा किया गया है। इस रिहाई का उद्देश्य यह है कि नई खिलाफत के खिलाफ सुन्नी मुसलमानों के एक वर्ग को संगठित किया जाए। इस रिपोर्ट में यह दावा किया गया है कि गत दो वर्षों में इस नए इस्लामी संगठन ने 12 यूरोपीय पत्रकारों को बंदी बनाया और इनमें से 8 को मोटी रकम लेकर कैद से छोड़ा जबकि शेष 4 पत्रकारों की निर्मम हत्या कर दी। नई खिलाफत ने 102 करोड़ डॉलर की धनराशि फिरौती के रूप में विभिन्न पश्चिमी देशों से वसूल की है जबकि 2050 करोड़ डॉलर की धनराशि उसे तेल के भंडार बेचकर प्राप्त हुई है। विपुल धनराशि का इस्तेमाल नई खिलाफत नए क्षेत्र में अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने के लिए कर रहा है। विदेशों में यह चर्चा भी गर्म है कि यूरोप, अमेरिका और चीन के गुप्त बाजार से नई खिलाफत भारी मात्रा में अत्याधुनिक अस्त्र–शस्त्र खरीद रही है। अमेरिकी समाचार पत्र 'वाशिंगटन पोस्ट' का दावा है कि इराक में कई टन रेडियो एक्टिव यूरोनियम भी नई खिलाफत के हाथ लगी है जिससे परमाणु बम बनाए जाने की सम्भावना है।

जहां तक भारत का सम्बंध है इस नई खिलाफत के मानचित्र में सम्पूर्ण भारत को इस्लामी खिलाफत का हिस्सा बताया गया है। नए खलीफा ने ये घोषणा की है कि भारत सहित सभी गैर–मुसलमानों द्वारा शासित देशों का पांच वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण इस्लामीकरण कर दिया जाएगा। उन्होंने दुनियाभर के मुसलमानों से अपील की है कि वे इस जिहाद में भाग लें। कुरान और हदीस के अनुसार यह हर मुसलमान का धार्मिक कर्त्तव्य है कि वह खलीफा के आदेश का पालन करे और जो खलीफा के आदेश का पालन नहीं करता वह इस्लाम से विद्रोह करता है तथा उसकी सजा मौत है। नए खलीफा ने यह भी घोषणा की है कि भारत में जहाद की शुरूआत कश्मीर से की जाएगी। इसके बाद सारे हिन्दुस्तान को (दारुल हरब) युद्ध के मैदान से बदलकर (दारुल इस्लाम) इस्लाम शासित देश में बदल दिया जाएगा। नए खलीफा की इस घोषणा के साथ ही कश्मीर में जिहादियों ने नई खिलाफत के झंडे हाथ में लेकर भारत

सरकार के खिलाफ उग्र प्रदर्शन करना शुरू कर दिया है। इसके साथ ही पाक अधिकृत कश्मीर की राजधानी मुजफराबाद में संयुक्त जिहाद काउंसिल के चैयरमैन सैयद सलाउद्दीन ने ये घोषणा की है कि सीरिया के मॉडल पर कश्मीर को भारत के चुंगल से आजाद करवाने के लिए जिहादी जवान अपना खून बहाने के लिए तैयार हैं। उन्होंने ये डींग भी हांकी है कि अब दुनिया की कोई भी ताकत कश्मीरियों को गुलाम नहीं रख सकेगी।

इसके अतिरिक्त यदि इराक में अशांति होती है तो उसका प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था के साथ–साथ सेना पर भी पड़ना निश्चित है। क्योंकि भारत अपनी कुल खपत का एक चौथाई तेल इरका से मंगवाता है। अतः भारतवासियों और सरकार का इराक के नए घटनाक्रम से चिंतित होना स्वाभाविक है।

गत वर्ष भारत नीति प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित एक गोष्ठी में सीरिया के राजदूत ने यह रहस्योदघाटन किया था कि भारतीय नागरिक सीरिया में सरकार के खिलाफ विद्रोहियों की ओर से जंग लड़ रहे हैं। उस समय तो भारत सरकार ने इस आरोप का खंडन कर दिया था। मगर अब सरकारी तौर पर यह स्वीकार किया गया है कि भारत में रहने वाले सैकड़ों मुसलमान युवक इस नई खिलाफत की ओर से जिहाद में शामिल हो कर युद्ध कर रहे हैं। अभी तक जो तथ्य प्रकाश में आये हैं उसके अनुसार इस जिहादी जंग में भाग लेने वाले भारतीय नागरिक महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, उत्तर प्रदेश और कश्मीर से सम्बंध रखते हैं। इनमें से अधिकांश उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। जिहाद के जुनून में दिवाने होकर इन्होंने अपने परिवारों को छोड़ दिया है और इराक में जाकर जिहाद में शामिल हो गए हैं। भारत से इन जिहादियों को किसने भर्ती किया है इसकी सरकारी गुप्तचर संस्थाएं बारीकी से जांच कर रही हैं।

स्वयंभू खलीफा अबू बकर अल बगदादी ने ये भी घोषणा की है कि नई खिलाफत में शिया मुसलमानों और गैर–मुसलमानों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। उन्होंने यह भी धमकी दी है कि इराक स्थित शियाओं के सभी पवित्र तीर्थ स्थानों का नामों–निशान मिटा दिया जाएगा। उनकी इस घोषणा की भारत सहित उन सभी देशों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई है जिनमें शिया रहते हैं। खास बात यह है कि नया खलीफा सुन्नियों से भी संतुष्ट नहीं है। उसने घोषणा की है कि इस वक्त पवित्र काबा पर जो लोग काबिज हैं वो सच्चे मुसलमान नहीं हैं। इसलिए उनका सफाया करके काबा को उनके चुंगल से मुक्त करवाना भी नई खिलाफत का लक्ष्य है। इस तरह से नए खलीफा ने सउदी अरब के सुन्नी शासकों के खिलाफ भी जिहाद छेड़ने की घोषणा कर दी है।

अमेरिकी लेखक जय सिकुलो ने यह दावा किया है कि आई.एस.आई.एस. सुन्नी जिहादियों का सबसे बड़ा और बेरहम संगठन है। वह इतना अतिवादी है कि अन्य कुख्यात आतंकवादी इस्लामी संगठनों ने न केवल उससे दूरी बना ली है बल्कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से इस नई खिलाफत की निंदा की है और इसे इस्लाम विरोधी करार दिया है। इसके साथ ही इन उग्रवादी इस्लामी संगठनों के जिहादी इस नई इस्लामी खिलाफत के जिहादियों से सशस्त्र संघर्ष भी कर रहे हैं। नई खिलाफत सिर्फ ईसाईयों, यहूदियों, शियाओं की ही दुश्मन नहीं है बल्कि वह सुन्नियों की भी दुश्मन है। इस खिलाफत की प्रहार शक्ति अलकायदा से भी ज्यादा है। इसके भ्रमित प्रचार के मोहपाश में फंसकर विश्व के 76 देशों के युवा और किशोर इसकी ओर से छेड़े गए जिहाद में अपने प्राणों की आहुति देने के लिए मैदान में कूद पड़े हैं। लेखक के अनुसार नई खिलाफत कुरान और शरा की धज्जियां उड़ा रही है। क्योंकि कुरान में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "अगर कोई मुसलमान किसी अन्य मुसलमान की हत्या करता है तो वो अल्लाह के कहर का शिकार होता है और अनादिकाल तक नर्क की आग में जलता है।"

इस्लाम के एक विचारक अहमद बिन नक्कव अल मिस्री ने सुन्नी मुसलमानों की शरिया कानून की पुस्तक 'रिलायंस ऑफ ट्रेवलर' में एक हदीस का उल्लेख करते हुए कहा है कि "अगर कोई मुसलमान जो इस बात में विश्वास रखता है कि सिर्फ एक ही अल्लाह है और (मैं) हजरत मोहम्मद उसी अल्लाह का भेजा हुआ पैगम्बर है तो उसे किसी भी मुसलमान का खून को बहाने अनुमति नहीं है। कोई भी मुसलमान किसी अन्य मुसलमान की हत्या तीन ही परिस्थितियों में कर सकता है – पहला वह बलात्कारी हो, दूसरा उसने किसी निर्दोष व्यक्ति की हत्या की हो या उसने इस्लाम को छोड़ दिया हो।" पैगम्बर ने यह भी कहा है कि किसी भी अन्य मुसलमान को अपनी जुबान से या हाथों से किसी तरह की हानि पहुंचाने का हक नहीं है।

नई खिलाफत अपने सभी विरोधियों की चाहे वह मुसलमान हो या गैर–मुसलमान निर्मम हत्या कर रही है। निहत्थे और घायलों को भी नहीं बख्शा जा रहा है। नई खिलाफत के लिए कुरान और हदीस की कोई कीमत नहीं है। नई खिलाफत के जिहादी आम नागरिकों और युद्ध बंदियों की निर्ममता पूर्वक हत्या कर रहे हैं। हाल ही में उन्होंने सात से दस वर्ष की आयु के हजारों बच्चों की भी सार्वजनिक रूप से हत्याएं की हैं। यहां तक कि पत्रकारों को भी नहीं बख्शा गया है और इन निर्मम हत्याओं के वीडियो टेप विश्वभर में प्रसारित किए गए हैं।

नई खिलाफत का इस्लामी नाम अल दवा अल इस्लामिया फिल इराक व शाम है। इसका झंडा काले रंग का है और उस पर लिखा है 'अलाह का रसूल मोहम्मद है और

अल्लाह ही अल्लाह है।' उसका मोटो है बाकिया (सदा रहो और सदा फैलो)। उसका राष्ट्रगान है "उ मेती काद ला फाजरन (मेरी उम्मा (दुनिया भर के मुसलमान) सूर्य उदय हो गया है)"। अमेरिकी गुप्तचर एजेंसी सीआईए के अनुसार नई खिलाफत के सैनिकों की संख्या 50 से 70 हजार के बीच है। जबकि कुर्दिश सरकार के अनुसार इसके सैनिकों की संख्या दो लाख के लगभग है। ये सभी लोग आधुनिकतम अस्त्र–शस्त्र से लैस हैं, जोकि उन्हें इराक और सीरिया की सेनाओं से प्राप्त हुए थे। इन दोनों देशों की सेनाओं ने बिना एक गोली चलाए अपने सभी अस्त्र–शस्त्र, टैंक, मिसाइल और वायुयान नई खिलाफत को सौंप दिए थे। नई खिलाफत का प्रधान सेनापति अबू उमर अल शिस्तानी है। इस नई खिलाफत के नियंत्रण में 50 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र है। न्यूयॉर्क टाइम्स के अनुसार इस नई खिलाफत के नियंत्रण में जो क्षेत्र हैं वहां की जनसंख्या दस और बारह लाख के बीच है। इराक और सीरिया के अतिरिक्त नई खिलाफत के जिहादी पूर्वी लीबिया, सिन्नाई क्षेत्र (मिस्र) और उत्तरी अफ्रीका में भी युद्ध कर रहे हैं। उनका अगला निशाना मध्य पूर्व एशिया, दक्षिणी एशिया और दक्षिण–पूर्वी एशिया के देश हैं।

नई इस्लामी खिलाफत की शुरूआत इराक में 1999 में जमायत अल तौहीद वल जिहाद के रूप में हुई थी। बाद में सीरिया में 2004 में इसका नाम बदलकर तंजीम कियादत अल जिहाद फी विलाद अल रफीदान रख दिया गया। 2003 में इराक पर अमेरिकी हमले के दौरान इस नए संगठन को इराक में अलकायदा का नाम दिया गया। 2006 में इन्होंने मुजाहिद्दीन शुरा काउंसिल का गठन किया। जिसमें इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक अल अनबार और किर कुक आदि 6 अन्य इस्लामी उग्रवादी संगठनों को शामिल किया गया। बाद में जब सीरिया में गृहयुद्ध शुरू हुआ तो इसमें वहां पर सक्रिय इस्लामी उग्रवादी संगठन जैसे अल रका, इदालिब, दिर इज ज़ोर और अलीपो भी शामिल हो गए। अप्रैल 2013 में इन संगठनों ने अलकायदा से अपने सम्बंध विच्छेद कर लिए और एक नए संगठन इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक और लीवेंट की घोषणा कर दी। इसका नया स्वयंभू खलीफा अबू बकर अल बगदादी बना। उसने दावा किया कि वो इस्लाम का नया खलीफा है और उसका नाम इब्राहिम है। इसके साथ इस नई खिलाफत में सीरिया का एक अन्य इस्लामी उग्रवादी संगठन अल नुसरा भी शामिल हो गया। बगदादी ने अमीर उल मोमनीन (दुनियाभर के मुसलमानों का नेता) की पदवी को धारण किया। बाद में इस नए खलीफा ने यह घोषणा की कि उसकी नई खिलाफत का नाम सुन्नी इस्लामिक स्टेट होगा और उसके तहत इराक, शाम, जॉर्डन, इजरायल, फिलिस्तीन, लेबनान, साइप्रस और तुर्की भी शामिल होंगे। अरबी क्षेत्रों में इस नए संगठन का नाम दाइश घोषित किया गया है। वाशिंगटन पोस्ट के अनुसार नई

खिलाफत उन 81 देशों में इस्लामी शासन स्थापित करना चाहती है जो कि कभी उस्मानिया साम्राज्य का हिस्सा हुआ करते थे। इनमें से 52 देश ऐसे हैं जिनमें इस समय मुस्लिम शासन नहीं है। इन सभी देशों में मुस्लिम शासन की स्थापना इस नए संगठन का लक्ष्य है।

भारत के शिया संगठन अंजुमन हैदरी ने यह घोषणा की है कि भारत से दस लाख शिया जवान अपने पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए इराक जाकर इस नए खलीफा के समर्थकों का मुकाबला करेंगे। इस संगठन के प्रवक्ता बहादुर अब्बास ने यह दावा किया है कि अब तक एक लाख जवान इराक जाने के लिए अपने नाम दर्ज करवा चुके हैं। इनमें से दस हजार जवानों ने दिल्ली स्थित इराकी दूतावास से इराक जाने के लिए वीजा भी मांगा है। सुन्नी जिहादियों द्वारा यू–ट्यूब पर इराक में शियाओं की हत्याओं की जो तस्वीरें डाली गई हैं उनके कारण शिया और सुन्नियों में तनाव बढ़ रहा है। लखनऊ आदि कुछ जगहों पर शिया और सुन्नियों में संघर्ष भी हुआ है जिसमें काफी लोग घायल हुए हैं।

हमारे देश के अधिकांश लोग खलीफा और खिलाफत के बारे में ज्यादा नहीं जानते। इसीलिए इस संदर्भ पर भी प्रकाश डालना उचित है। खलीफा का अरबी भाषा में शाब्दिक अर्थ उत्तराधिकारी है। इस्लामी परम्परा के अनुसार खलीफा को हजरत मोहम्मद साहब का प्रतिनिधि माना जाता है। हजरत मोहम्मद के निधन के बाद सर्वसम्मति से हजरत अबू बकर को उनका प्रतिनिधि चुना गया था। उनके उत्तराधिकारी हजरत उमर हुए। उनकी एक सुन्नी गुलाम ने हत्या कर दी और उनका उत्तराधिकारी हजरत उस्मान को चुना गया। चार वर्ष बाद जब वो एक मस्जिद में कुरान का पाठ कर रहे थे तो उनकी भी हत्या कर दी गई। उनका उत्तराधिकारी हजरत मोहम्मद के दामाद हजरत अली को बनाया गया। हजरत अली भी कुरान पढ़ते हुए मार दिए गए।

शिया सम्प्रदाय के लोग इनमें से पहले तीन खलीफाओं को मान्यता नहीं देते। उनका कहना है कि इन तीनों का चयन लोकतांत्रिक ढंग से नहीं बल्कि मनमाने ढंग से किया गया था। वे अली को ही प्रथम खलीफा के रूप में मान्यता देते हैं। यही शिया–सुन्नी के विवाद का मूल कारण है। जब इस्लाम का प्रसार अन्य देशों में हुआ तो धीरे–धीरे खलीफा के पद ने मुसलमानों के सम्राट का रूप ले लिया। खलीफा को अमीर उल मोमिनीन (दुनियाभर के मुसलमानों का सम्राट) कहा जाता है। खिलाफत की ये परम्परा 1400 वर्ष तक जारी रही। 1924 में तुर्की के राष्ट्रपति कमाल अतातुर्क ने खिलाफत के पद को समाप्त कर दिया।

सवाल यह पैदा होता है कि अचानक 90 वर्ष गुजर जाने के बाद इन जिहादियों को खिलाफत को पुनर्जीवित करने का ख्याल कैसे आ गया? इस्लामी परंपराओं के अनुसार खलीफा की दुनियाभर के मुसलमानों में सर्वोच्च हैसियत होती है। उसे इस्लाम में शासक के साथ–साथ धर्म के सर्वोच्च व्यक्ति होने का भी गौरव प्राप्त होता है। खलीफा को सभी मुस्लिम सम्राटों, शासकों, सुल्तानों और नवाबों आदि का सिरमौर माना जाता है। उसके सामने सभी मुस्लिम शासक निम्न कोटि के समझे जाते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस्लाम के बड़े से बड़े शासक का हमेशा यह प्रयास रहता था कि खलीफा उसे मान्यता प्रदान करे। इसके लिए शासक दोनों हाथों से खलीफा की सेवा में नजराने पेश किया करते थे। जहां तक भारत का सम्बंध है इस देश पर जिन भी मुसलमान आक्रमणकारियों ने तलवार के जोर से कब्जा किया उनका हमेशा यह प्रयास रहा कि उनके इस कब्जे को विभिन्न खलीफाओं द्वारा मान्यता दी जाए। महमूद गजनवी ने भी खलीफा की मान्यता प्राप्त करने के लिए भारत के विभिन्न मंदिरों से लूटे हुए बहुमूल्य हीरे–जवाहरात खलीफा की सेवा में बगदाद भेजे थे। उस समय खलीफा ताए लिल्लाह था। खास बात यह है कि खलीफा को महमूद ने जो तोहफे भेजे उनमें सोमनाथ के शिवलिंग के कुछ टुकड़े भी थे। जिन्हें अब्बासी खलीफा ने बगदाद की मस्जिद की सीढ़ियों में गढ़वा दिया था। इसके बाद मोहम्मद गोरी और उसके गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने भी खलीफा से मान्यता प्राप्त करने के लिए इमाम फखरूद्दीन राजी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल बगदाद भेजा था। हैरानी की बात तो यह है कि अलाउद्दीन खिलजी जोकि एक धार्मिक व्यक्ति नहीं था उसने भी खलीफा की कृपा प्राप्त करने के लिए इब्न बतूता के हाथ खलीफा के हुजूर में 25 करोड़ के मूल्य के तोहफे भिजवाए। मुगल शहंशाह शाहजहां भी खलीफा की कृपा पाने के लिए बेकरार था और उसने मिस्र में खलीफा के हुजूर में अपना एक प्रतिनिधिमंडल करोड़ों रुपये के बहुमूल्य हीरे–जवाहरात खिल्लत (सम्मान में भेजा जाने वाला वस्त्र) के साथ भिजवाये थे। खलीफा द्वारा शहंशाह की हुकूमत की पुष्टि किए जाने की खुशी में दिल्ली में एक महीने तक जश्न मनाया गया था। विशेष बात यह है कि मैसूर के सुल्तान टीपू ने भी खलीफा से मान्यता प्राप्त करने के लिए तीन बार प्रतिनिधिमंडल तुर्की भिजवाया था।

शायद यही कारण है कि इस्लामिक जगत में सम्मान प्राप्त करने के लिए अलकायदा के पुराने जिहादी अबू बकर अल बगदादी ने भी स्वयंभू खलीफा होने का ऐलान कर दिया।

अबू बकर अल बगदादी ने इस पृष्ठभूमि को सामने रखते हुए नए खलीफा होने का दावा किया है। इराक के रहने वाले अल बगदादी को कभी अलकायदा के प्रमुख

आतंकवादियों में शुमार किया जाता था। 2003 में अमेरिका ने उसे गिरतार भी किया था। कुछ वर्ष वह जेल में भी रहा। 2009 में अमेरिका ने उसे जेल से मुक्त कर दिया। इराक में अलकायदा की पृष्ठभूमि पर भी विचार करना बेहद जरूरी है। जार्डन के एक आतंकवादी जिहादी नेता अबू मुसफ अल जरकवी ने अफगानिस्तान में रूस के खिलाफ छेड़े गए जिहाद में हिस्सा लिया था इसके बाद उसने एक नया जिहादी संगठन अल तहविद अल जिहाद स्थापित किया और अमेरिका के खिलाफ जिहाद शुरू कर दिया। कुछ दिनों के बाद उसने इराक को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। उसने अपना सम्बंध अलकायदा से जोड़ा जिस पर अलकायदा ने उसे ईराक में एक नए संगठन अलकायदा का अमीर नियुक्त किया। उसकी मौत के बाद इस संगठन का नया नामकरण हुआ और अक्टूबर 2006 में इस नए संगठन का नाम इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक (आईएसआईएस) रखा गया और इसका नेतृत्व अबू उमर अल बगदादी तथा अल मिस्री को सौंपा गया। इन लोगों ने इराक में अमेरिकी सैनिक ठिकानों पर हमले किए। अप्रैल 2010 में इन दोनों को अमेरिका ने मार गिराया। इसके बाद इस संगठन की कमान अबू बकर अल बगदादी ने संभाली। इस व्यक्ति का असली नाम इब्राहिम अलवाद अल बदरी बताया जाता है। ये इराक के नगर समरा का मूल निवासी है। जिस परिवार में ये व्यक्ति पैदा हुआ है वह कट्टर सुन्नी परिवार है। बगदाद विश्वविद्यालय से इसने पीएचडी की डिग्री प्राप्त की है। 2003 में इसने एक उग्रवादी संगठन जमायत जैश एहले सुन्ना स्थापित किया था। जिसका लक्ष्य इराक में सुन्नियों के अधिकारों का संरक्षण करना था। उस समय इराक के सुन्नी ये अनुभव करते थे कि सद्दाम हुसैन के सत्ता से हटाये जाने के बाद देश का शासन शियाओं के हाथ में चला गया है। 2004 में उसे अमेरिका ने गिरफ्तार कर लिया और 2009 तक कैद रखा। इस दौरान उसकी ख्याति एक धार्मिक विद्वान के रूप में फैली और उसका सम्पर्क अलकायदा नामक संगठन से हुआ। कहा जाता है कि अबू बकर अल बगदादी ने कैद में रहते हुए इराक में सुन्नियों का एक जिहादी संगठन स्थापित करने में सफलता पाई थी। इस संगठन के तार सउदी अरब से जुड़े हुए थे। सउदी अरब ने इस उग्रवादी संगठन की हर तरह से सहायता की। कहा जाता है कि इराक के सुन्नी इस बात से सख्त नाराज थे कि इराक की नूरी अल–मुल्की की सरकार ईरान की सहायता से शिया आतंकवादी संगठन का ढांचा बना रही है।

जेल से मुक्त होने के बाद 2010 में जब उसने इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक का नेतृत्व संभाला तो उसने इराक के सुन्नियों में ये प्रचार करना शुरू किया कि जब अमेरिकी सेना इराक से चली जाएगी तो अल–मुल्की की सरकार चीन की मदद से सुन्नियों को इराक से चुन–चुनकर बाहर निकाल देगी। इस दौरान ईरान के प्रमुख सलाहकार

काशिम सुलेमानी ने बगदाद के चक्कर काटने शुरू कर दिए। इस मौके का फायदा उठाकर अबू बकर अल बगदादी ने सुन्नी जगत में ये प्रचार करना शुरू किया कि यदि उनके संगठन इस्लामी स्टेट ऑफ इराक की सुन्नी जगत ने डटकर सहायता न की तो नूरी अल–मुल्की की सरकार इराक से सुन्नी मुसलमानों को जबरन पलायन करने पर मजबूर कर देगी। इस प्रचार का काफी लाभ हुआ और अरब जगत के अधिकांश शासकों ने बगदादी को सहायता देना तेज कर दिया। सीरिया में जो अशांति पैदा हुई उसका भी इस व्यक्ति ने लाभ उठाया और उसने उत्तर–पूर्वी सीरिया में अपने उग्रवादी संगठन आईएसआई के अड्डे स्थापित कर लिए। धीरे–धीरे उसने इस सारे क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। इस क्षेत्र के पास इराक के निवेश प्रदेश में तेल के भारी भंडार हैं। आतंकवादियों ने स्थानीय बिजली घरों और तेज शोधक कारखानों पर भी अपना अधिकार कर लिया और उन्होंने तेल कम्पनियों एवं व्यापारिक संगठनों से जबरन वसूली का सिलसिला तेज कर दिया। हैरानी की बात है कि सीरिया की अल बशद सरकार ने इस नए उग्रवादी संगठन के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने हेतु कोई कारगर कदम नहीं उठाया। इस स्थिति का लाभ उठाकर सउदी अरब और तुर्की की गुप्तचर एजेंसियों ने सीरिया में विद्रोही गतिविधियों को और भी भड़काना शुरू कर दिया। कहा जाता है कि आईएसआई के लड़ाकुओं को अमेरिकी गुप्तचर एजेंसियों ने जार्डन में स्थित युद्ध प्रशिक्षण शिविरों में प्रशिक्षण भी दिया। इसी दौरान सीरिया में एक नया उग्रवादी संगठन जबद अल नुसरा अस्तित्व में आया। इस संगठन का सम्बंध भी अलकायदा से बताया जाता है। सन् 1999 के अंत तक इन दोनों संगठनों में भारी तालमेल था। मगर इसके बाद इन दोनों में मतभेदों की शुरूआत हुई। जुलाई 2012 में अल बगदादी ने घोषणा की कि उसका अलकायदा से कोई सम्बंध नहीं है। उसने यह भी घोषणा की कि इराक और सीरिया में किसी भी गैर–सुन्नी को रहने नहीं दिया जाएगा। इसके बाद उसने ईसाईयों को चुन–चुनकर अपना निशाना बनाना शुरू किया। इसके साथ सीरिया के शिया भी उसकी हिंसक गतिविधियों का शिकार बनें। अप्रैल 2013 में अल बगदादी ने अपने जिहादी संगठन का नया नाम इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एण्ड सीरिया रखा। उसकी इस हरकत को अलकायदा ने पसंद नहीं किया और उसने अल बगदादी को चेतावनी दी कि वह सीरिया से अपना बोरिया–बिस्तर बांधकर इराक चला जाए। सीरिया में जिहाद की कमान अल नुसरा के पास ही रहने दें। कहा जाता है कि इसके बाद सीरिया में अल नुसरा और इस नए संगठन के सैनिकों के बीच भयंकर खूनी संघर्ष का सिलसिला तेज हो गया। अल बगदादी ने इराक में फरात नदी के समीप महत्वपूर्ण शहरों रामदी और फाजुला पर अधिकार कर लिया। बड़ी अजीब बात है कि इराकी सेना ने इनका सामना करने के बजाय वहां से भागना ही उचित समझा। इसके बाद आई.एस.आई.एस. ने दजला नदी

को पार करके मोसूल के इर्द–गिर्द अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया। इस क्षेत्र में पेट्रोलियम के भारी भंडार हैं। अमेरिका और रूस ने इराक की नूरी अल–मुल्की सरकार को सैनिक सहायता देना शुरू किया। इसके बाद बगदादी और इराक के सैनिकों में संघर्ष और तेज हो गया।

नई खिलाफत इस्लाम की सलाफी अल तकफीरी नामक विचारधारा में आस्था है। सउदी अरब के शासक भी इसी विचारधारा को मानते हैं। इस विचारधारा के अनुसार जो मुसलमान इस्लाम में आस्था का दावा करता है मगर उसके सिद्धांतों का पालन नहीं करता है वह काफिर से भी बुरा है और उसे किसी भी कीमत पर जिंदा रहने का हक नहीं है। ये विचारधारा दरगाहों, मकबरों के भी सख्त खिलाफ है। यही कारण है कि इस नई खिलाफत को मानने वाले इराक में स्थित ऐतिहासिक मकबरों और दरगाहों को ध्वस्त करके उनका नामों–निशान मिटा रहे हैं। इसका मानना है कि जो लोग इस विचारधारा से सहमत नहीं हैं उनकी हत्या करना इस्लाम को पाक रखने के लिए बेहद जरूरी है। नई खिलाफत इस मान्यता को विश्वभर के देशों पर लागू करना चाहती है। यही कारण है कि इस्लामी देशों के शासकों में इस नई खिलाफत के कारण काफी बेचैनी फैली हुई है।

मोहसिल की जामा मस्जिद में अपने खुतवे में नए खलीफा इब्राहिम ने ये धमकी दी है कि अब वह वक्त दूर नहीं है जबकि इस्लाम के मुजाहिद तौहिद का झंडा बुलंद करेंगे और अपनी तलवारों की जोर पर अल्लाह की हुकूमत और पैगम्बर के सच्चे सिद्धांतों को लागू करेंगे तथा लोकतंत्र, राष्ट्रवाद आदि भ्रष्ट सिद्धांतों का खात्मा कर देंगे और एक अवाम के झंडे के नीचे सारी मुस्लिम मिल्लत को एकत्रित करेंगे। खलीफा ने विश्वभर के मुसलमानों से अपील की है कि वे पैगम्बर की सुन्ना को लागू करने के लिए इस्लामी जिहाद में शामिल हों।

नए खलीफा का अनेक उग्रवादी इस्लामिक संगठनों ने खुलकर समर्थन करना शुरू किया है। इनमें माली का संगठन इनसारेदिन, नाइजीरिया का संगठन बोको हराम और पूर्वी अफ्रीका का संगठन अल शबाब आदि प्रमुख हैं।

अब अल बगदादी ने ये महसूस किया कि अलकायदा से विद्रोह करने के बाद इस्लामिक जगत में उसकी हैसियत कम हो गई है। मुस्लिम ब्रदरहुड और अन्य आतंकवादी इस्लामी संगठन उसे मान्यता देने की बजाय उसकी जड़ें काटने में लगे हुए हैं। इसीलिए अल बगदादी ने खलीफा बनने का नाटक किया। इस्लामी इतिहास में सबसे बड़ा साम्राज्य उस्मानी खलीफाओं का था। इसीलिए उन्होंने विश्व के सुन्नी

मुसलमानों में अपनी जगह बनाने के लिए नए खलीफा होने की स्वतः ही घोषणा कर दी। विश्वभर के मुसलमान उस्मानी खलीफा काल को इस्लाम का स्वर्णयुग मानते हैं। उस समय इस्लाम, यूरोप, अफ्रीका और एशिया के 90 से अधिक देशों में फैला हुआ था और इन सभी देशों के शासक मुसलमान थे। नए खलीफा ने सुन्नी मुसलमानों को इसी स्वर्णयुग का ख्वाब दिखाकर उनके दिलो–दिमाग पर छा जाने का प्रयास किया है। शायद यही कारण है कि उन्होंने प्रस्तावित खिलाफत के क्षेत्र का जो मानचित्र प्रसारित किया है उसमें वे सभी देश शामिल किए गये हैं जो कि कभी उस्मानी खलीफाओं के नियंत्रण में हुआ करते थे। मुसलमान धार्मिक दृष्टि से बेहद भावुक होते हैं। इसीलिए नए खलीफा ने भावनात्मक दृष्टि से उनको ब्लैकमेल करने के लिए नई खिलाफत की घोषणा की है। वे इस तथ्य को भली–भांति जानते हैं कि खलीफा के रूप में इस्लामी जगत के किसी शासक की ये हिम्मत नहीं होगी जो उसकी उपेक्षा कर सके। आम मुसलमानों में सम्मान का दर्जा प्राप्त करने के लिए उसने नए खलीफा होने की घोषणा की है। इराक और सीरिया में दौलत इस्लामिया इराक व सीरिया की ओर से लड़ने वाले जिहादियों की संख्या जिस तरह तेजी से घट रही है और उसे सीरिया और इराक के राजकीय सेनाओं का सामना करने में कठिनाई हो रही है उसको देखते हुए उसने नए खलीफा होने का दांव खेला है। यही कारण है कि उसने दुनियाभर में फैले मुसलमानों में जिहाद का उन्माद भड़काया है। इस तरह से इस्लाम की रक्षा के नाम पर वह दुनियाभर के मुसलमानों को जिहाद की आग में झोंक सकेगा। दुनियाभर के मुसलमान इस्लामी खिलाफत को पुनः स्थापित करने के नशे में मस्त होकर अपने–अपने खजाने नए खलीफा के लिए खोल देंगे। धन और जन मुसलमानों का होगा और सत्ता का सुख नए स्वयंभू खलीफा भोगेंगे। यही रणनीति नए खलीफा की है।

उसका एक उद्देश्य यह भी है कि इस्लाम के नए खलीफा की सेनाओं के विजय अभियान को विश्वभर में प्रसारित किया जाए। यही कारण है कि नई खिलाफत के समर्थक अपने विजय अभियानों को महिमामंडित करने के लिए इंटरनेट आदि आधुनिक प्रचार साधनों का डटकर सहारा ले रहे हैं। इराक और सीरिया के शासकों ने उसके इस प्रचार अभियान में बाधा डालने का जो प्रयास किया था वो सफल नहीं हुआ। नई खिलाफत के नक्शे में भारत, श्रीलंका, चीन, सिक्यांग, मध्य एशिया के मुस्लिम देश, रूस, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, इराक सहित पूरा अरब प्रायद्वीप, तुर्की, स्पेन, दक्षिण यूरोप, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका आदि के 73 देश आई.एस.आई.एस. झंडे के काले रंग में रंगे हुए दिखाये गए हैं। अबू बकर अल बगदादी ने अपने वीडिया टेप में सारे विश्व के मुसलमानों से अपील की है कि वे इस नई खिलाफत के साथ जुड़ें और जिहाद में भाग लेने के लिए अपने–अपने घरों से निकलकर इस्लाम की सेना में

शामिल होने के लिए इराक और सीरिया पहुंच जाएं। उसने सभी मुस्लिम शिक्षाविदों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, न्यायविदों, वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों को ये निर्देश दिया है कि वह सच्ची मुस्लिम खिलाफत के लिए काम करें। वह कहता है "हथियार उठाओ, फिर हथियार उठाओ इस्लाम के सिपाहियों लड़ो, काफिरों और मुशरकों का सफाया करो। इस्लाम की सर्वोच्च सत्ता खिलाफत को स्थापित करो। यदि जिहाद में कुर्बान होते हो तो शहादत का दर्जा पाओगे। जन्नत में अनादिकाल तक मजे लूटोगे और अगर विजयी हुए तो गाजी का दर्जा पाओगे और इसी जगत में जन्नत के मजे लूटोगे।"

मुसलमानों के इस आह्वान का लक्ष्य उनके भाव को झिंझोड़कर उन्हें इस्लामी खिलाफत के पुराने कल्पना लोक में ले जाना है। इस नई खिलाफत का जिस तरह से शिया और कई सुन्नी नेताओं ने भी खुलेआम विरोध करना शुरू किया है उससे ये संदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि क्या नई खिलाफत का यह दांव सफल होगा या फिर इससे पूर्व किए गए खिलाफत के अन्य कई दावों की तरह विफल होकर धूल में मिल जाएगा। इस्लामी खिलाफत का इतिहास शुरू से ही रक्त–रंजित रहा है। खिलाफत के विवादों का निपटारा लाशों और भीषण रक्तपात द्वारा होता रहा है। इस बात को कौन नहीं जानता कि हजरत अली की हत्या के बाद उनके पुत्र हसन को खिलाफत का दावा करने की हिम्मत नहीं हुई थी। मदाविया के समर्थकों ने करबला के मैदान में रसूल के सभी परिवारजनों का सफाया कर दिया था। नन्हे–मुन्हे बच्चों को भी नहीं बख्शा गया। वे प्यास के मारे तड़प–तड़प कर मरें। दूध मुंह बच्चे तीरों का निशाना बने। खून की होली का सिलसिला इसके बाद भी जारी रहा। खिलाफत के विभिन्न दावेदारों में जोरदार युद्ध हुए। मुसलमानों का खून मुसलमानों ने ही बहाया। क्या अब भी इसी इतिहास को दोहराया जाएगा? कौन मुसलमान है और कौन काफिर इसका फैसला आज तक नहीं हो सका? अहमदियों को आज भी इस्लाम के दावेदार मुसलमान मानने को तैयार नहीं हैं। यही स्थिति बहाई मुसलमानों की भी है। बहाई मत के प्रवर्तक बहीउल्ला मुसलमानों द्वारा ही शहीद किए गए। पाकिस्तान में अहमदियों के विरूद्ध हुए दंगों में सवा लाख से अधिक लोग मार दिए गए। इन दंगों की जांच के लिए जो मुनीर आयोग गठित किया गया था वह भी यह फैसला नहीं कर पाया कि असली मुसलमान कौन है और मुशरब (गैर–मुसलमान) कौन? यही स्थिति इस्लाम के 73 मसलिकों के अनुयायियों की भी है। इनमें से प्रत्येक स्वयं को सच्चा मुसलमान और दूसरे को इस्लाम का शत्रु ठहराता है। क्या ऐसी स्थिति में नई खिलाफत के बीज इस्लामी जगत में पनप सकेंगे?

'द इक्नॉमिस्ट' के अनुसार अमेरिका ने नई खिलाफत के खिलाफ जिहाद तो छेड़ दिया है मगर वो शाम की बशर अल असद सरकार का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है।

यह जरूर हुआ है कि नई खिलाफत के खिलाफ हवाई हमलों के अभियान में पांच सुन्नी अरब देश अमेरिका के दबाव में शामिल हो गए हैं। इसके कारण इस जिहादी संगठन का बगदाद पर कब्जा करने का अभियान रुक गया है। अमेरिका ने शाम में असद सरकार के खिलाफ युद्ध कर रहे आतंकवादी संगठन जाबत अल नुसरा के ठिकानों को अपना निशाना जरूर बनाया है। अमेरिका ने इराक के बदनाम प्रधानमंत्री नूरी अल मुल्की को हटाकर एक नए व्यक्ति हैदर अल आबदी को नया प्रधानमंत्री बना दिया है। शायद अमेरिका ने यह कदम इसलिए उठाया है कि नई खिलाफत के खिलाफ शियाओं के साथ इराक के सुन्नियों का भी सहयोग प्राप्त किया जा सके। दूसरी ओर रूस के सरकारी समाचार पत्र परवदा ने यह दावा किया है कि अमेरिका ने रूस को तबाह करने के लिए इस नई इस्लामी खिलाफत को मैदान में उतारा है। अमेरिका और रूस के बाद चीन को अपना निशाना बनायेगा। इसलिए विश्व को सावधान रहने की जरूरत है। अभी अमेरिका भले ही शाम में इस्लामी खिलाफत के सैनिकों को अपना निशाना बना रहा हो मगर उसका अगला निशान बशर अल असद है। अमेरिका बशर अल असद के खिलाफ जंग लड़ रही कथित लिबरेशन ऑर्मी को हर तरह की सहायता प्रदान कर रहा है। पुराने रूस के इस्लामी जिहादियों को अमेरिका शायद इस नई इस्लामी खिलाफत की सेनाओं में शामिल करवाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। रूस के राष्ट्रपति ब्लादीमीर पुतिन यह घोषणा स्पष्ट शब्दों में कर चुके हैं कि वे रूस के पुराने क्षेत्रों में अमेरिका को अपने पैर पसारने की अनुमति किसी भी स्थिति में नहीं देंगे।

संदर्भ सूची

1. A Short History of the Saracens by Syed Amir Ali.
2. मिल्लते इस्लामिया का संक्षिप्त इतिहास भाग–1, सरवत सौलत।
3. A Brief History of Islam by Dr. Hasanuddin Ahmed.
4. Rise of ISIS by Jay Sekulow.
5. परवदा, 08 अक्टूबर, 2014, इक्नॉमिस्ट, 20 दिसम्बर, 2014, न्यूयॉर्क टाइम्स, 12 दिसम्बर, 2014, न्यूयॉर्क टाइम्स, 23 सितम्बर, 2014, मेल टुडे, 12 जून, 1914, अल अरेबिया न्यूज, अक्टूबर 2014, हिन्दुस्तान टाइम्स, 11 अक्टूबर, 2014, इंडियन एक्सप्रेस, जुलाई 2014, हिन्दुस्तान टाइम्स, 28 जून, 2014, हिन्दू, जुलाई 2014, पायनियर, 14 जून, 2014, नई दुनिया साप्ताहिक, 15 सितम्बर, 2014।

4 खिलाफत का रक्त-रंजित इतिहास

इस्लामी परम्पराओं के अनुसार खलीफा धर्म और राजतन्त्र दोनों का प्रमुख होता है। कुछ वर्गों द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि खलीफा पैगम्बर के कबीला कुरैश से संबंधित होना चाहिए। इस्लामी परम्परा के अनुसार खलीफा को इमाम का दर्जा भी दिया गया है। इसका कारण यह स्पष्ट करना है कि खलीफा धर्म का प्रमुख है। अब्बासी खलीफा मंसूर ने पहली बार सन् 1775 में अपने खुतबे में यह दावा किया कि वह इस धरती पर अल्लाह का सुल्तान है।

इस्लामी इतिहास में पहले चार खलीफाओं को खिलाफत–ए–राशिदा की संज्ञा दी है। उनके अनुसार यह इस्लामी खलीफाओं का स्वर्णयुग था। मगर यदि इन खलीफाओं के शासनकाल का विश्लेषण किया जाए तो मुस्लिम इतिहासकारों का यह दावा कसौटी पर खरा नहीं उतरता। शियाओं का यह दावा है कि पैगम्बर मुहम्मद ने मरते समय अपने दामाद हजरत अली को उत्तराधिकारी बनाने की वसीयत की थी। इसकी पुष्टि लेखक एम.जे. अकबर ने भी की है। उनका कहना है कि हजरत मोहम्मद ने अपना उत्तराधिकारी अली को नियुक्त किया था मगर हजरत मोहम्मद की चहेती पत्नी आइशा ने साजिश करके अपने पिता अब्बू बकर को खलीफा बना दिया। खिलाफत के प्रश्न पर चार गुट बने। एक गुट मदीना वासियों का साथ जोकि अंसार कहलाते थे। दूसरा गुट मुजाहीर का था। उनका कहना था कि खिलाफत पैगम्बर–ए–इस्लाम के वंश के प्राप्त होनी चाहिए। तीसरा गुट मोहम्मद के कबीला बन्नू हासिम का था। उनका कहना था कि फातिमा और उनके पति अली को हजरत मोहम्मद मरने से पूर्व अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुके हैं। इसलिए उन्हें ही खलीफा बनाना चाहिए। जबकि चौथा गुट जिसके प्रमुख अब्बू सुफियान थे, जो कि किसी तरह के विवाद पैदा करने के खिलाफ थे। उमर ने यहां तक धमकी दे दी थी कि वह पैगम्बर की पुत्री फातिमा और उसके पति अली के मकान पर हमला करके उन्हें जीवित जला देंगे। उमर ने हालांकि यह आश्वासन दिया था कि वह अपने पुत्र अब्दुल्ला को अपना उत्तराधिकारी नहीं बनायेंगे। मगर मृत्यु से तीन दिन पूर्व उन्होंने अब्दुल्ला को अपना

उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। इसके खिलाफ उस्मान ने विद्रोह कर दिया। खूनी संघर्ष में कई लोग मारे गए। उस्मान की हत्या पैगम्बर की पत्नी आइशा के इशारे पर की गई। हत्यारों में पैगम्बर का साला मोहम्मद भी शामिल था। युद्ध के बाद अली खलीफा बन गया। उसे उस्मान के कबीला के लोगों जो उम्मीदीया कहलाते थे, खलीफा मानने से इंकार कर दिया। हजरत अली को अपनी जान बचाने के लिए अपनी राजधानी मदीना से कूफा ले जानी पड़ी। मुआविया और आइशा ने अली को खलीफा मानने से इंकार कर दिया। कैमल के युद्ध में अली विजयी रहे। उन्होंने आइशा को कैद कर लिया जबकि मुआविया से समझौता कर लिया। अली के खिलाफ एक गुट खारजियों का खड़ा हो गया और उन्होंने अली की हत्या कर दी। अली के बाद उनके पुत्र हसन ने खलीफा होने का दावा किया। मगर मुआविया ने उन्हें धमकी दी कि अगर उन्होंने खिलाफत पर अपना दावा न छोड़ा तो उसकी सहपरिवार हत्या कर दी जाएगी। हसन डर गया और मुआविया खलीफा बन गया। हसन को मुआविया ने विष देकर मार दिया। शिया मुसलमानों का कहना है कि मुआविया और हसन के बीच जो समझौता हुआ था उसमें मुआविया ने यह वायदा किया था कि वह खिलाफत अपने पुत्र यादीद को नहीं सौंपेंगे। मगर उन्होंने इस समझौते का उल्लंघन करते हुए अपने पुत्र यादीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। इस तरह से खिलाफत का पद पैतृक बना दिया गया। दूसरे दिन मस्जिद मबवी में हजरत अबू बकर के हाथ पर मुसलमानों ने बैत ली (बैत का अर्थ है आज्ञा पालन का प्रण करना)। इस प्रक्रिया के अनुसार मुसलमान अपने खलीफा के हाथों में हाथ देकर ये वायदा करता है कि वह हमेशा खलीफा के आदेश का पालन करेगा। उस समय अरब की सरहद पर दो बड़े साम्राज्य थे। एक ईरान का साम्राज्य था जिसके सम्राट को किसरा कहा जाता था। जबकि दूसरा रोम का साम्राज्य था, जिसे बाजनतीनी (बाइजण्टाइन) हुकूमत भी कहते थे। इसका सम्राट कैसर कहलाता था। हजरत खलीद बिन वलीद को खलीफा ने ईरान पर हमला करने के लिए भेजा और उनसे काफी क्षेत्र जीतने के बाद वलीद को शाम भेजा गया। हजरत अबू बकर का शासन केवल ढाई वर्ष तक ही रहा। उनके शासनकाल में पूरे कुरान मजीद को लिखित रूप दिया गया। इसे मुसहफे सिद्दीकी कहा जाता है। उन्होंने अपना उत्तराधिकारी हजरत उमर को बनाया जोकि पैगम्बर के नजदीकी रिश्तेदार थे। उनके शासनकाल में ईरान और शाम पर मुसलमानों का कब्जा हुआ। इराक और ईरान को विजय कर लिया गया। इसके बाद मिस्र पर भी मुसलमानों का कब्जा हुआ। हजरत उमर ने कुल साढ़े दस वर्ष खिलाफत की। इसके बाद वह एक ईरानी के हाथों मारे गए। तीसरे खलीफा उस्मान हुए जोकि पैगम्बर के सगे साले थे। उनकी भी विरोधी मुसलमानों ने हत्या कर दी। उनकी हत्या के बाद मुसलमानों में गृहयुद्ध शुरू हुआ। हजरत अली चौथे खलीफा बने। मगर उनके खिलाफ मुसलमानों

ने खुला विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का नेतृत्व हजरत मोहम्मद की पत्नी आईशा ने किया। युद्ध में आईशा के सभी समर्थक मारे गए और आईशा को कैद कर लिया गया। इस घटना के बाद चार वर्षों तक मुसलमानों में गृहयुद्ध चलता रहा, जिसे 'फितना काल' की संज्ञा दी जाती है। जंग–ए–जमाल के बाद हजरत अली ने कूफा को अपनी राजधानी बनाया। शाम के गर्वनर अमीर मुआविया ने हजरत अली को मान्यता नहीं दी। दोनों पक्षों में दो बार भीषण युद्ध हुआ। हजरत अली जब नमाज पढ़ रहे थे तो उन्हें इब्न मलजम ने तलवार मारकर कत्ल कर दिया। शिया परम्परा के अनुसार हजरत अली ने किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया था। मगर इसके बावजूद कूफा के लोगों ने उनके पुत्र हजरत हसन को अपना खलीफा चुना। इस पर अमीर मुआविया ने ईराक पर हमला कर दिया हसन भागकर मदीना चले गए और खिलाफत पर अमीर मुआविया ने जबरन कब्जा कर लिया। इस तरह से खिलाफत–ए–राशीदा की चुनाव प्रणाली खत्म हो गई और इस्लामी इतिहास में मलूकियत (राजतन्त्र) की शुरुआत हुई।

इस तरह से 'उमय्या' वंश के खिलाफत की शुरुआत हुई। अमीर मुआविया के शासनकाल में मुसलमानों का साम्राज्य अफ्रीका तक पहुंच गया। नए खलीफा ने अपनी राजधानी दमिश्क को बनाया। मुसलमानों का साम्राज्य बड़ी तेजी से फैला। अरब सैनिक जहां भी गए, उन्होंने जमकर लूटपाट की और लाखों बेगुनाह लोगों की हत्या की। लूटपाट का जो माल आया, उससे नए खलीफा ने दमिश्क में अनेक शानदार भवनों का निर्माण कराया। इससे पूर्व मुस्लिम खलीफाओं के निवास स्थान कच्ची मिट्टी से बनाए जाते थे। अमीर मुआविया ने शहंशाहों की तरह शाहाना ठाठ–बाठ से रहना शुरू किया। उन्हें अपनी हत्या किए जाने का खतरा था इसीलिए उन्होंने भारी संख्या में सशस्त्र अंगरक्षक नियुक्त किए। खिलाफते राशिदा के शासनकाल में लूटा गया माल एक खजाने में जमा कर दिया जाता था जिसे बैत–ए–माल कहा जाता था। उसे सारी मिल्लत की संपत्ति माना जाता था। अमीर मुआविया ने इसे खजाने को अपना व्यक्तिगत कोष बनाया। इसके साथ ही उन्होंने खलीफा के पद को पैतृक बनाया। सभी पुराने नियमों को ताक पर रखकर अपने पुत्र यादीद का जनता के भारी विरोध के बावजूद अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। मुआविया के शासनकाल में करबला का युद्ध हुआ जिसमें मुआविया के आदेश से मोहम्मद के सभी वंशजों की निर्ममतापूर्वक हत्या कर दी गई।

खिलाफत बनी उमय्या 661 ई. से 750 ई. तक रही। हिशाम का उत्तराधिकारी वलीद बिन यजीद जो वलीद द्वितीय कहलाता है, एक अयोग्य और ऐयाश शासक था। उसके शासनकाल में अरबों के विभिन्न कबीलों में मतभेद बढ़े। जब उसकी हत्या करने के

लिए लोग उसके महल में दाखिल हुए तो वह अपनी जान बचाने के लिए कुरान खोलकर पढ़ने लगा। मगर इसके बावजूद उसकी हत्या कर दी गई। इसके बाद छह खलिफाओं का शासनकाल बहुत अल्प है। क्योंकि उनकी विरोधियों द्वारा निरंतर हत्या की जाती रही। अरब दो गिरोहों में बंट गए। इनमें एक यमनी और दूसरा मिस्री था। दोनों एक दूसरे को कत्ल करते रहे। मोहम्मद के एक वंशज बनी हाशिम ने उमय्या वंश के खिलाफ इसलिए विद्रोह किया क्योंकि वह स्वयं को पैगम्बर का वंशज होने के कारण खिलाफत का असली वारिस समझता था। बाद में बनी हाशिम में भी दो गिरोह पैदा हो गए। एक वह जो हजरत अली और उसकी औलाद को खिलाफत का हकदार समझता था। बाद में इसी गिरोह में से कुछ लोगों ने शिया फिरका (सम्प्रदाय) का रूप ले लिया और वे 'असना–अशरी' कहलाए। दूसरा गिरोह हजरत मोहम्मद के चाचा हजरत अब्बास के वंशजों को खिलाफत दिलाना चाहता था। इन दोनों की जंग का फायदा अब्बासी वंश ने उठाया। इस अवधि में 12 खलीफा इस वंश के हुए। पैगम्बर–ए–इस्लाम की दसवीं पत्नी हजरत आईशा की हत्या अमीर मुआविया के इशारे पर की गई। इसके बाद हर उस व्यक्ति की हत्या की गई, जिसने उमय्या वंश से खलीफाओं के खिलाफ आवाज उठने की हिम्मत की। यह हत्याकाण्ड तीन दिन तक जारी रहा। कई हजार बेगुनाह मार डाले गए। सिंध को जीतने का मुसलमानों ने तीन बार प्रयास किया था मगर उन्हें हर बार मुंह की खानी पड़ी। चौथी बार बसरा के हाकिम हजाज ने अपने दामाद 17 वर्षीय मोहम्मद बिन कासिम को सिंध की राजधानी ब्रह्मबाद हमला करने के लिए भेजा। सिंध के शासक दाहिर के कुछ साथियों ने गद्दारी की और वे आक्रमणकारी मुसलमानों के साथ मिल गए। युद्ध में मोहम्मद बिन कासिम की विजय हुई और सिंध मुसलमानों के साम्राज्य में शामिल हो गया। इस वंश के यदि कुछ खलीफाओं को छोड़ दिया जाए तो अधिकांश खलीफा ऐशपरस्त थे। उन्होंने शराब और संगीत को प्रोत्साहन दिया। इनके शासनकाल में मुसलमानों में मतभेद तेजी से बड़े हैं। मगर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस्लाम का शासन चीन, भारत, अफ्रीका और यूरोप के अनेक देशों तक फैल गया। लेकिन इसी दौरान मुसलमानों में दर्जनों नए सम्प्रदाय पैदा हो गए। इस वंश के हाथ क्योंकि हजरत अली की औलाद के खून से रंगे हुए थे इसीलिए खार्जी, शिया, इस्माइलियों, हाशिमओं, अलमीयों ने इस वंश के खात्मे के लिए सक्रिय भाग लिया। मुसलमानों के मतभेदों का लाभ उठाकर अब्बासी वंश ने खिलाफत पर कब्जा कर लिया। अब्दुल्ला बिन मोहम्मद पहला अब्बासी खलीफा था। खिलाफत का पद सम्भालते ही उसने बन्नी उमय्या के अधिकांश मर्दों को कत्ल करवा दिया। इस नए खलीफा ने इराक के शहर अनबार को अपनी राजधानी बनाया। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार इस खलीफा ने तख्त पाने के लिए 6 लाख लोगों के खून से अपने हाथ रंगे थे। दमिश्क फतह करके अब्बासी

फौजों ने वहां के किसी मर्द, औरत और बच्चे को नहीं बख्शा। शहर को लूटने के बाद इस नगर के रहने वाले सभी नागरिकों को या तो कत्ल कर दिया गया या फिर उन्हें जीवित जला दिया गया। हजरत अमीर मुआविया सहित सभी उमवी की कब्रें खोद डालीं गईं। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार उमवी वंश के बच्चे–बच्चे को चुनकर उनकी हत्या की गई और सिसकते हुए लोगों के शवों पर दस्तरख्वान बिछाकर खाना खाया गया। यही कारण है कि इतिहासकारों ने इस खलीफा को 'सफाह' (खून बहाने वाला का नाम दिया गया)। अब्बासी खलीफा 785 ई. से लेकर 1258 ई. तक सत्ता में रहे। इस काल में कुल 21 खलीफा हुए। इनमें अधिकांश को कत्ल किया गया।

जमाते–इस्लामी के प्रमुख सैयद अबू अल अली मादूदी ने अपनी पुस्तक 'खिलाफत व मुलकीयत' में कहा है कि अब्बासी फौजों ने दमिश्क को विजय करके 50 हजार मुसलमानों की वहां हत्या की। जामिया बिन उमय्या मस्जिद को घोड़ों का अस्तबल बना दिया गया। अब्बासी वंश के पहले खलीफा के खिलाफ जब मोहसल में विद्रोह हुआ तो उसने अपने भाई यय्यीया को इस विद्रोह को कुचलने के लिए वहां भेजा। यय्यीया ने घोषणा की कि जो व्यक्ति मस्जिद में शरण लेगा उसे जीवनदान दिया जाएगा। मगर जिन 20 हजार लोागें ने इस मस्जिद में शरण ली थी उन सभी की निर्मम हत्या कर दी गई। कई हजार औरतों से बलात्कार किया गया। (विख्यात शिया लेखक मोहम्मद अली तिबाबा का कथन है कि अब्बासी शासनकाल फरेब और बेवफाई पर आधारित था।) खलीफा मंसूर ने इस्लाम के सबसे बड़े विद्वान इमाम आजम अबू हनीफा को कैद कर दिया और इसके बाद उन पर भीषण अत्याचार किया गया। जिससे उनकी मौत हो गई। इसी खलीफा ने अब्बन जिलान और इमाम अब्दल हमीद बिन जाफर को भी जेल में डाल दिया गया और वहीं उनकी मौत हुई। अबू मुस्लिम खुरासानी, जिसके कारण अब्बासी खिलाफत स्थापित हुई थी, को धोखा देकर खलीफा ने अपनी राजधानी में बुलाया और जब वह खलीफा के साथ खाना खा रहा था, तो उसकी हत्या करवा दी गई। मोहम्मद अली तिबाबा ने अपनी पुस्तक 'अल तहरी' में कहा है कि अबू मुस्लिम ऐसा व्यक्ति था, जिसने अब्बासियों की खिलाफत को स्थापित करने के लिए यमन, अरब, इराक, ईरान में डेढ़ लाख से अधिक मुसलमानों व गैर–मुसलमानों की हत्या की थी। मगर खलीफा ने अपने इस सहयोगी को भी नहीं बख्शा। खलीफा अल मेहदी इब्न मंसूर के बारे में मुस्लिम इतिहासकार बसार ने लिखा है कि वह अंधाधुंध शराब पिया करता था और उसके हरम (रनवास) में सात हजार औरते थीं। खलीफा अन्धविश्वासी था और उसने इस्लाम के नियमों की धज्जियां उड़ाते हुए संगीत को प्रोत्साहन दिया। अरब इतिहासकारों के अनुसार उसकी हत्या उसकी मां खेजरान ने करवाई थी। मुस्लिम इतिहासकार हारून रशीद खलीफा को

महिमा मंडित करते हैं। मगर इब्राहिम इब्न मेंहदी नामक मुस्लिम इतिहासकार के अनुसार हारून रशीद ने अपने सगे भाई अल आमीन की हत्या करवाई थी। एक अन्य लेख इब्बन जरेरी अल बसरी के अनुसार खलीफा को हिजड़ों से बहुत दिलचस्पी थी और उसने सैकड़ों खूबसूरत हिजड़ों को खरीदकर अपने महल में रखा हुआ था। उनसे उसके शारीरिक संबंध थे।

खलीफा मामून रशीद को मुस्लिम इतिहासकर सबसे श्रेष्ठ शासक बताते हैं। मगर जब 'फितन–ए–खल्के–कुरआन' के प्रश्न पर उस समय के सबसे बड़े इस्लामी विद्वान इमाम अहमद बिन जुब्बले ने खलीफा का विरोध किया तो उसकी हत्या करवा दी गई। खलीफा वासिक ने इस्लामी विद्वानों के उत्पीड़न के लिए एक लोहे का तन्दूर बनाया था, जिसमें कई नुकीले कीलें लगे हुए थे। जो इस्लामी विद्वान खलीफा का विरोध करता उसको इस तन्दूर में डालकर हत्या कर दी जाती। उन्होंने उस काल के सबसे बड़े मुस्लिम विद्वान इमाम अहमद बिन हंबल को कई महीने तक कैद में रखा और उस पर कई तरह के अत्याचार किए गए। बाद में उसकी आंखें निकलवाने के बाद हत्या कर दी गई। खलीफा मंसूर के बाद मराकश का इलाका अब्बासी खिलाफत से आजाद हो गया था। हारून रशीद के जमाने में एक और इलाका जो अफ्रीका कहलाता था और मौजूदा तराबुलुस (Tripolis), तूनिस (Tunish) और अल–जजायर (Algiers) जिसमें आते हैं, वह किसी हद तक खुद–मुखतार हो गया। केन्द्रीय हुकूमत से दूर होने के कारण इस इलाके की शासन–व्यवस्था में कठिनाई होती थी इसलिए हारून ने यहां की हुकूमत स्थायी रूप से एक व्यक्ति इब्राहिम बिन अगलिब और उसकी औलाद के हवाले कर दी। इस तरह अफ्रीका में एक नई हुकूमत की बुनियाद पड़ी, जो 'अगालिबा' या 'खानदाने अगलिब' की हुकूमत कहलाती है। यह अगलिबी हुकूमत व्यावहारिक रूप से खुद–मुख्तार थी, परंतु अब्बासी खिलाफत को स्वीकार करती थी और हर साल नियमित रूप से खिराज दिया करती थी जो, इसका सुबूत था कि यह हुकूमत अब्बासी खिलाफत का एक हिस्सा है। खलीफा जाफर मोतकल ने हजरत इमाम हुसैन की कब्र खोद डाली थी और उस पर हल चलवाये थे। अब्बासी वंश के पतन काल के दौरान 12 अन्य खलीफा हुए। अन्तिम खलीफा मुकतकी था जिसकी हत्या की गई। इसके बाद खलीफा तुर्क शासकों के हाथ में कठपुतली बन गए और कुल 37 अब्बासी खलीफा हुए।

बनू अब्बास के पतन का एक कारण यह भी था कि अब्बासी हुकूमत की स्थापना में ईरानियों का बहुत बड़ा हाथ था। बाद में ये दोनों लड़ने लगे। दोनों ने एक–दूसरे के हजारों समर्थकों का कत्लेआम किया। खिलाफत का लक्ष्य इस्लामी मिल्लत के कल्याण की बजाय शासकों के व्यक्तिगत स्वार्थ बन गए। अब्बासी खिलाफत के जमाने

में तुर्कों ने भारी संख्या में इस्लाम कुबूल किया और वे सेना में छा गए। ईरानियों, अरबों और तुर्कों के आपसी झगड़े के कारण खलीफा मुतवक्किल को अपनी राजधानी 'सामरा' में बनानी पड़ी। इन तीनों की आपसी जंग के कारण अब्बासी खिलाफत का पतन हुआ। इस दौर की दूसरी महत्वपूर्ण घटना करामिता का फित्ना था। बसरा वासी करमत ने पैगम्बर होने का ऐलान किया। उसने 929 ई. में हज के अवसर पर काबा में हजारों हाजियों का कत्लेआम किया। अब्बासी वंश के पतन के बाद उनका साम्राज्य खंडित हो गया। जो नए शासक वंश उभरे उनमें सामानी, बनू बुवैह, खिलाफते फातिमिया आदि प्रमुख हैं।

उमय्या वंश के एक व्यक्ति अब्दुर्रहमान ने स्पेन पर कब्जा कर लिया और वहां पर एक नया शासक वंश चलाया, जो कि 800 साल तक जारी रहा। इसका मुख्यालय कुरतुबा था। इस वंश ने भी खिलाफत पर दावा किया था मगर उनका यह दावा अरबों और तुर्कों ने कभी स्वीकार नहीं किया। अन्दलुस की उमवी हुकूमत 756 ई. से लेकर 103 ई. तक रही। इस वंश के दस प्रमुख शासक हुए जिन्होंने खलीफा होने का दावा किया।

ब्रिटिश इतिहासकार सर थॉमस डब्ल्यू. आर्नल्ड ने अपनी पुस्तक *'द खिलाफत'* में इस बात पर जोर दिया है कि बगदाद के अन्तिम खलीफा तुर्क शासकों के हाथ में कठपुतली थे। सन् 1928 में इन शासकों ने खलीफा मुकतदीर की हत्या करवा दी और उसकी जगह उसके भाई काहिर को उत्तराधिकारी बनाया। दो वर्ष बाद ही उसकी आंखें निकलवा दी गई और उसे जेल में डाल दिया गया। उसकी जगह उसके भतीजे रादी को खलीफा बनाया गया। काहिर पेट भरने के लिए मस्जिदों में भीख मांगा करता था। बगदाद के तुर्क शासक जिसे चाहते थे खलीफा बना देते थे और जिसे चाहते थे खिलाफत के पद से हटाकर उसकी हत्या कर देते थे। खलीफा मुकतदीर को अपनी जान बचाकर बगदाद से भागना पड़ा। उसने विभिन्न मुस्लिम शासकों से शरण मांगी। मगर उसे किसी ने शरण नहीं दी। अन्त में वह तुर्की सेनापति तुजून की शरण में आया। तुजून के आदेश से उसकी आंखें निकाल ली गई और उसे खिलाफत के पद से हटा दिया। एक अन्य कठपुतली मुस्तफाकी को खलीफा बनाया गया। ईरान से आए हुकूमत बनी बुवया के एक शासक मुअज्जद्दौला ने 945 ई. में बगदाद पर कब्जा कर लिया। खिलाफत अब भी कायम रही क्योंकि मुसलमान खिलाफत को इस्लामी राजनीति व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा समझते थे। एक खलीफा के बाद दूसरा खलीफा तख्त पर बैठता रहा। मगर इन खलीफाओं को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। शासन दूसरों का था। यह स्थिति सौ वर्ष तक रही। इसके बाद खलीफा फिर आजाद हो गए मगर उनकी हुकूमत सिर्फ इराक तक सीमित रही। दस कठपुतली खलीफा जहर देकर मार दिए गए।

सर अर्नाल्ड के अनुसार खलीफा के हाथ में भले ही शासन की बागडोर नहीं थी मगर इसके बावजूद इस्लामी जगत में उसकी एक महत्वपूर्ण हैसियत थी। इस्लामी जगत में जो भी नया सुल्तान बनता वह अपनी स्थिति को उम्मा में महबूत करने के लिए खलीफा से फरमान जरूर प्राप्त करता। उदाहरण के रूप में भारत में गुलाम वंश की स्थापना हो चुकी थी। मगर अल्तमश ने एक विशेष प्रतिनिधि मण्डल बगदाद भेजा और खलीफा से अपने पद की पुष्टि करवाने के लिए उसे भारी धनराशि नजराने के रूप में दी। इसी तरह से अलाउदीन खिलजी ने भी सुल्तान होने की पुष्टि के लिए बगदाद के खलीफा को भारी रकम नजराने के रूप में पेश की। खास बात यह है कि दिल्ली के इन दोनों सुल्तानों ने अपने नाम के जो सिक्के जारी किए उन पर खलीफा मुस्त हजर का नाम अंकित था। मंगोलो ने इस खलीफा की हत्या कर दी मगर दिल्ली के सुल्तान उसके मरने के बाद भी सौ वर्ष तक उसी के नाम पर हिन्दुस्तान में सिक्के चलाते रहे।

इससे भी रोचक बात यह है कि 1340 ई. में दिल्ली के सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक ने बगदाद के खलीफा मुश्ताकफी से हिन्दुस्तान के सुल्तान के रूप में खिल्लत प्राप्त की। उसने अपने सिक्कों पर खलीफा मुश्ताकफी का नाम लिखना शुरू किया। यह खलीफा तो मर गया मगर तुगलक वंश के समाप्त होने तक भारत भर में इसे खलीफा के नाम पर सिक्के चलते रहे। इससे साफ है कि मुस्लिम सुल्तान अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए खलीफा का सहारा लिया करते थे।

इसी ब्रिटिश लेखक ने अपनी पुस्तक में इस बात पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है कि खलीफा की पदवी का लाभ उठाने के लिए कई मुस्लिम शासकों ने भी मनमाने ढंगे से खुद को खलीफा लिखना शुरू कर दिया। हालांकि उनका खिलाफत से कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसे इस्लामी शासकों के दबाव के कारण इस्लाम के चिन्तक अल बकलानी ने यह घोषणा की कि मुसलमानों के खलीफा का कुरैश कबीला से सम्बन्ध होना जरूरी नहीं है। तैमूर के पोते खलील सुल्तान स्वंय–भू खलीफा बन गया और उसने अपने नाम के साथ अमीर अल मुसलमीन लिखना शुरू किया। उसी का अनुसरण उसके चाचा और समरकन्द के शासक शाहरूख ने भी किया। ट्यूनिशिया में आसिद वंश के शासकों ने भी खलीफा होने का दावा शुरू किया। रोचक बात तो यह है कि 1332 ई. में जल जल्लार वंश के शासकों ने बगदाद पर कब्जा करने के बाद अपने नाम के साथ अमीन उलमोमनीन और जिल्ले इलाही लिखना शुरू किया। मगर उनका शासन 1417 ई. में हूजून हुसैन ने खत्म कर दिया। सर आर्नल्ड ने ऐसे एक दर्जन अन्य मुस्लिम शासकों का उदाहरण इस सन्दर्भ में दिया है।

अब्बासी खिलाफत को मुसलमानों की सभ्यता और संस्कृति के उत्थान का जमाना कहा जाता है। अब्बासी खिलाफत हालांकि बन्नी उमय्या की खिलाफत के मुकाबले कम विस्तृत थी। क्योंकि स्पेन और मराकस के देश उनके प्रभुत्व से बाहर थे। यह खिलाफत सिन्धु नदी से लेकर अटलांटिक महासागर तक 5 हजार मील के विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई थी। इस सल्तनत में तुर्क, पठान, सिन्धी, ईरानी, कुर्द, अरब, मिस्री, बरबर, स्पेनी आदि अनेक जातियों के लोग रहते थे। मुसलमान ऐशपरस्त हो गए थे। विभिन्न कौमों के मेल से एक नई संस्कृति का जन्म हुआ जोकि उस समय की सबसे उत्कृष्ट और विकसित सभ्यता थी। अब्बासी खिलाफत बनि उमय्या की तरह विशुद्ध अरब खिलाफत नहीं थी। इस दौर में ईरानी, तुर्की, हिन्दुस्तानी भी शासक में शामिल हो गए थे। खलीफा और उसका वंश अरब था। प्रशासन व्यवस्था में ईरानियों का जोर था तो फौज में तुर्कों का आधिपत्य था। लेकिन इन सब पर इस्लाम हावी था। अब्बासी खिलाफत इस्लामी खिलाफत थी। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि अब्बासियों ने अपने आधिपत्य को बरकरार रखने के लिए अरबों को अरब से और अरबों को गैर–अरबों से लड़वाया। इस शासनकाल में अरबों के खिलाफ भावनाओं को भड़काने में खलीफाओं ने भी विशेष रुचि ली। अब्बासी हुकूमत भी उमवी हुकूमत की तरह मुलूकियत (राजतन्त्र) थी। अब्बासियों ने न्याय पर आधारित स्थापित करने का जो वायदा किया था वह सिर्फ वायदा ही रहा। खुरासान के फकीह इब्राहिम बिन मैमून ने अब्बासियों का साथ इसलिए दिया था ताकि वह कुरान और सुन्नत के अनुसार हुकूमत करें। मगर जब उसने अबू मुस्लिम मुरासानी से अल्लाह की हुकूमत को स्थापित करने की मांग की और शासकों को कुरान और सुन्नत के खिलाफ काम करने पर टोका तो अबू मुस्लिम ने उसे कत्ल करवा दिया। अब्बासी काल में इस्लाम–विरोधी संस्कृति, जिसमें शराब, औरत और संगीत की भूमिका मुख्य थी, खूब पनपी। अब्बासी खलीफाओं ने सेना को नए–नए हथियारों से लैस किया। कृषि और सिंचाई के साधनों की वृद्धि की। हिन्दू और रूमी वास्तु शिल्पकारों ने एक नई वास्तुकला को जन्म दिया। अब्बासी खलीफाओं ने भारत से चार सौ विद्वान बगदाद मंगवाये थे। इन विद्वानों ने ज्योतिष, आयुर्वेद, नक्षत्र–विज्ञान, गणित आदि विषयों की हजारों संस्कृत में लिखी पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया। कहा जाता है कि उस समय बगदाद में एक सरकारी अस्पताल था। इसमें एक हजार रोगियों को भर्ती करके उन्हें चिकित्सा की सुविधायें उपलब्ध करवाने की व्यवस्था खलीफा के शासनकाल में की गई थी। उसका प्रमुख चिकित्सक भरतराज नामक एक भारतीय व्यक्ति था।

धीरे–धीरे अब्बासी खलीफा कमजोर होते गए। मुतवक्किल अब्बासी खिलाफत के उत्थान काल का अन्तिम शक्तिशाली शासक था। इसके बाद अब्बासी खिलाफत का

पतन शुरू हुआ और धीरे–धीरे इस साम्राज्य में शामिल विभिन्न क्षेत्रीय शासकों ने स्वाधीनता का ऐलान शुरू कर दिया। मुन्तसिर बिल्लाह के शासनकाल में एक ईरानी शासक वंश जो कि बनू बुवैह कहलाता था, शक्तिशाली होना शुरू हुआ। इस वंश का मुख्य शासक इमादुद–दौला था। इसके बाद उसका भाई रूकनुद–दौला शासक बना। बगदाद पर इस खानदान के राजा मुअज्जद–दौला ने 945 में कब्जा कर लिया। इसके बाद अब्बासी खलीफाओं की हैसियत नाम मात्र की रह गई। मगर उनके पद को नए शासकों ने बरकरार रखा। इसी वंश के शासक अजुदुद–दौला ने बगदाद और ईरान का खूब विकास किया। कई नहरें खुदवाईं, दजला नदी पर कई पुल बनवाये, शिराज में सिंचाई के लिए एक बड़ा बांध बनवाया जोकि अमीर बांध के नाम से आज भी मौजूद है। इस शासक की मृत्यु के बाद इसके राज्य में विघटन शुरू हो गया। 1055 ई. में सलजूकियों ने बगदाद पर कब्जा करके इस शासन का अन्त कर दिया। बनु बुवैह शासक सभी शिया थे इसीलिए उनके शासनकाल में शिया मत को काफी प्रोत्साहन मिला। बगदाद शिया–सुन्नियों के दंगों का गढ़ बन गया। इतिहासकार मुकद्दसी लिखता है कि नागरिक कट्टर हम्बली और अमीर मुआविया के पक्के अनुयायी हैं और दूसरे सभी मुसलमानों को काफिर करार देते हैं। इस सूबे में शिया–सुन्नी दंगे होते रहते हैं। अब्बासी शासन के अन्तिम दिनों में बगदाद का वैभव धीरे–धीरे कम हो रहा था। मुसियम बाला खलीफा तुर्क सेनापतियों के हाथ में मात्र एक कठपुती था। उसने अपना मंत्री मोईद उलद्दीन अल कमि को बनाया जोकि एक शिया था। इस मन्त्री ने मंगोल सम्राट हलाकू खां से सम्पर्क किया और उन्हें बगदाद पर हमला करने के लिए उकसाया। हलाकू की ततारी फौजों ने इराक को विजयी करते हुए बगदाद को घेर लिया। खलीफा के मंत्री ने उसे सलाह दी कि ततारियों के साथ युद्ध करने की बजाय उनसे समझौता कर लिया जाए। मंत्री के साथ खलीफा हलाकू के शिविर में पहुंचा। हलाकू ने खलीफा को कहा कि वह अपनी प्रजा को ये निर्देश हैं कि वह खाली हाथ नगर से बाहर आकर आत्मसमपर्ण कर दें। बगदाद के नागरिक जैसे ही आत्मसमपर्ण के लिए नगर से बाहर निकले इन निहत्थे लोगों का, जिनमें मर्द, औरतें एवं बच्चे शामिल थें, ततारियों ने निर्ममतापूर्वक हत्या करनी शुरू कर दी। इस्लामी इतिहासकार मौलाना अकबर शाह नजीबाबादी का कहना है कि ततारियों ने इराक पर हमले के दौरान एक करोड़ छः लाख मुसलमानों की हत्या की। खरबों रुपये का जो खजाना खलीफाओं ने एकत्रित कर रखा था, उसे ततारियों ने लूट लिया। खलीफा के सलाहकारों के इशारे पर हलाकू ने अपने सैनिकों को निर्देश दिया कि खलीफा को एक स्तम्भ से बांध दें और उसे लातें मार–मारकर मार दें। दुनिया में साढ़े तीन वर्ष तक मुसलमानों का खलीफा ना रहा। मगर बाद में अन्तिम खलीफा के चाचा अब्दुल कासिम आजम को खलीफा बना दिया गया।

इसी दौरान मिस्र का शासन ममलूक वंश के मलिक मुजफ्फर ने सम्भाला। उसने ततारियों को पराजित किया। लाखों ततारी कत्ल किए गए। मलिक मुजफ्फर की मृत्यु के बाद उसका प्रधान सेनापति रुक्नुद्दीन बैबरस शासक हुआ। उसने अपना नाम मलिक अल तहर रखा। उसने अब्बासी वंश के 37वें खलीफा अबुल कासिम को काहिरा बुलाया और उसके हाथ पर बैत ली। नए खलीफा का नाम अल मस्तकर बाल्लाह रखा गया। नए खलीफा ने मलिक अल जहर के शासकों ने पुष्टि की। इस खलीफा का उत्तराधिकारी खलीफा मरशद बनाया गया। उसका उत्तराधिकारी बामर अल्लाह बना जोकि 40 वर्ष तक खलीफा रहा। इस तरह से मिस्र में जो अब्बासी खलीफा हुए उनकी कुल संख्या 18 बताई जाती है। तुर्की के सुल्तान सलीम उस्मानी के बाद 18वीं शताब्दी में उसका बेटा अब्बू अल बैज मुस्तकफी बाल्लाह बना। इतिहासकारों के अनुसार काहिरा में बारह अब्बासी खलीफा हुए। मिस्र में खलीफाओं की स्थिति नाम मात्र की थी। मगर वह अधिकांश मुस्लिम शासकों को फरमान जारी करके उनके शासक होने की पुष्टि करते थे। मिस्र के ममलूक सुल्तान हालांकि स्वयं को खलीफा का नायब घोषित करते थे मगर उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। उन्हें गुजारे के लिए मिस्र के ममलूक सुल्तान सीमित भत्ता देते थे। 1516 ई. में सलीम ने मिस्र पर हमला करके उसे जीत लिया। अन्तिम सुल्तान तमिन बेग को बन्दी बना लिया गया। मिस्र के साथ–साथ अरब, सीरिया आदि पर वानिया के सुल्तानों का कब्जा हो गया। मक्का और मदीना पर इनका अधिकार होने के कारण उस्मानिया का साम्राज्य सबसे बड़ा साम्राज्य बन गया। मिस्र की विजय के कारण अन्तिम अब्बासी खलीफा मोहम्मद भी सलीम के कब्जे में चला गया। सलीम इस अन्तिम और अब्बासी वंश के 55 खलीफा को अपने साथ इस्ताम्बुल अर्थात् तुर्की में ले गया। मगर ये खलीफा उस्मानिया सुल्तानों के हाथ में मात्र कठपुतली थे। तुर्की के सुल्तान सलीम ने खलीफा मोहम्मद को अपदस्थ करके खिलाफत खुद सम्भाल ली। इस वंश के कुल 18 खलीफा हुए।

तुर्की के खलीफाओं के साम्राज्य के विघटन की चर्चा करते हुए ब्रिटिश इतिहासकार सर एडविन पियर्स ने कहा है कि 1887 में खलीफा अब्दुल हमीद प्रथम के शासनकाल में तुर्की साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया तेज हो गई। हर्जेगोविना, सरबिया और मॉण्टेनेगरो जैसे प्रदेश तुर्की साम्राज्य से स्वतन्त्र हो गए। 1877 में रूस ने तुर्की पर हमला कर दिया और 1878 में रूसी सेनाओं ने इस्ताम्वुल को घेर लिया। उसी वर्ष बर्लिन की सन्धि के फलस्वरूप तुर्की को बॉस्निया और हर्जेगोविना के क्षेत्र ऑस्ट्ररिया के हवाले करने पड़े जबकि रोमानिया, सरबिया और मॉण्टेनेगरो आजाद हो गए। बलगेरिया ने भी स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। इसी तरह से यूरोप के सभी देश जो कभी उस्मानिया साम्राज्य का हिस्सा थे, उसके हाथ से निकल गया। खलीफा अब्दुल

हमीद ने एशिया में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने का निर्णय किया। इसलिए उसने मिस्र, ट्यूनिश, भारत, अफगानिस्तान, जावा और चीन में अपने राजदूत भेजे। मगर अजीब बात है कि मुसलमानों ने खलीफा की अपील की पूर्ण रूप से अपेक्षा की। कहा जाता है कि खलीफा के विरोधियों ने यह तर्क दिया कि कुरान और हदीस के अनुसार वही व्यक्ति खलीफा हो सकता है, जिसका सम्बन्ध हजरत मोहम्मद के कबीले कुरैश से हो। तुर्की के उस्मानिया वंश के खलीफाओं का सम्बन्ध कुरैश कबीला से नहीं था। इसलिए उनके दावे की एशियाई मुसलमानों ने उपेक्षा की। सुन्नी उम्मा को तुर्की के सुल्तानों में कोई रुचि नहीं थी।

अन्तिम खलीफा अब्दुल हमीद द्वितीय था। जिसे 1923 में तुर्की के राष्ट्रीय अध्यक्ष ने खिलाफत के पद से हटा दिया। मार्च 1924 को तुर्की की महान राष्ट्रीय एसेम्बली ने एक प्रस्ताव पारित करके खिलाफत का अन्त कर दिया। अन्तिम खलीफा सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय को तुर्की से भागकर फ्रान्स में शरण लेनी पड़ी।

मुस्लिम विद्वान अब्दुल कादिम जलूम ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'खिलाफत कैसे तबाह हुई' में यह सनसनीखेज आरोप लगाया है कि खिलाफत तबाह करने में ईसाई समुदाय का सबसे बड़ा हाथ था, जो यह समझते थे कि जबतक खिलाफत रहेगी वे मुसलमानों को ईसाई धर्म में दीक्षित नहीं कर सकेंगे। इसलिए ब्रिटेन आदि यूरोप के ईसाई देशों ने एक तुर्कीवासी कमाल अतातुर्क से गठजोड़ किया। अतातुर्क ने ईसाईयों की कठपुतली बनकर खिलाफत का नामोनिशान मिटाने में विशेष भूमिका निभाई। तुर्की के मुसलमान उलेमा को जबरन पश्चिमी वेश–भूषा अपनाने पर विवश किया। जो मुसलमान दाढ़ी रखता था या अरबी लिबास पहनता था उसकी हत्या करवा दी जाती थी या फिर उसे जेल में डाल दिया जाता था। तुर्की भाषा की लिपि तुर्की से बदलकर रोमन कर दी गई। देशभर में इस्लामी शिक्षा देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। तुर्की को सेकुलर देश घोषित किया गया। मस्जिदों में नमाज पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। उस्मानिया सल्तनत के ब्रिटेन, जर्मनी, ग्रीस और रूस ने मिलकर टुकड़े–टुकड़े करके उन पर अपना कब्जा जमा लिया।

रियासत हैदराबाद के निजाम मीर उस्मान अली का दावा था कि उनका सम्बन्ध उस्मानिया वंश से है। इसलिए उन्होंने मुसलमानों का खलीफा बनने की एक योजना बनाई। निजाम ने अपने पुत्र का विवाह अन्तिम खलीफा की पुत्री दाराशिरवा से किया। ब्रिटिश शासकों के दबाव के कारण मीर उस्मान अली खां मुसलमानों के खलीफा का पद प्राप्त करने से वंचित रह गए।

इन खलीफाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य मुस्लिम शासकों ने भी खलीफा बनने का प्रयास किया। इनमें फातिमिया वंश प्रमुख है। मगर इनकी खिलाफत अफ्रीका तक ही सीमित रही। सुन्नी मुसलमानों ने इन्हें खलीफा के रूप में मान्यता नहीं दी। 909 ई. में उत्तरी अफ्रीका में फातनिया साम्राज्य की स्थापना हुई। इस साम्राज्य का संस्थापक उबैदुल्लाह चूंकि हजरत फातिमा की औलाद से था इसीलिए इसे सल्तनते फातिमिया की संज्ञा दी जाती है। फातिमी खलीफा शिया थे। इसीलिए उन्होंने अब्बासी खलीफाओं की सत्ता को स्वीकार नहीं किया और जुम्मा की नमाज के खुत्बे से अब्बासी खलीफाओं को नाम निकाल दिया और खुद खलीफा होने का ऐलान किया। इसीलिए उनकी हुकूमत को खिलाफते फातिमिया भी कहा जाता है। प्रारम्भ में फातिमी हुकूमत उत्तरी अफ्रीका तक सीमित रही। लेकिन इस वंश के शासक अल–मुइज्ज ने 968 ई. में मिस्र को विजयी कर लिया और उसने काहिरा को अपनी राजधानी बनाया। उसके शासनकाल में जामे अजहर नामक एक मस्जिद का निर्माण हुआ, जो बाद में इस्लामिक विश्वविद्यालय बन गया। इस वक्त इसे इस्लामी जगत का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय माना जाता है। उसके बेटे अजीज ने शाम (सीरिया), हिजाज और यमन पर भी कब्जा कर लिया। इस तरह से फातिमी सल्तनत एक विशाल इस्लामी साम्राज्य में बदल गई। इस वंश का शासनकाल पौने 300 वर्ष तक रहा। बाद में सीरिया के शासक नूरुद्दीन ने इस वंश का खात्मा कर दिया। इस वंश के 14 खलीफा हुए और उनका शासनकाल 1171 ई. तक जारी रहा। इस वंश का अन्तिम खलीफा अजीद था। खास बात यह है कि इन खलीफाओं को सुन्नियों ने मान्यता नहीं दी।

इसके अतिरिक्त मुवाहि्हदीन वंश के 13 शासकों ने भी मुसलमानों का खलीफा होने का दावा किया। इस वंश का शासन उत्तरी अफ्रीका और खलबेरिया तक था। मगर इन्हें भी विश्व के मुसलमानों ने मान्यता प्रदान नहीं की। शरीफ फान वंश के हसन बिन अली जोकि हिजाज का शासक था उसने 1924 में मुसलमानों के खलीफा होने का दावा किया। मगर 1925 में मुसलमानों के नए वंश अल सऊद ने अरब पर कब्जा कर लिया। हसन बिल अली सउदी अरब से भाग गया और वह 1931 तक मुसलमानों के खलीफा होने का दावा करता रहा। मगर उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने खलीफा होने का दावा करना बन्द कर दिया।

इतिहासकार सर आर्नल्ड के अनुसार तुर्की में खिलाफत के खात्मे के बावजूद कई सुन्नी शासक खलीफा होने का दावा करते रहे। विशेष रूप से मलाया में सात रियासतों के शासक अपने नाम के साथ खलीफा की उपाधि का इस्तेमाल कर रहे हैं।

ब्रिटिश सरकार के इशारे पर सियालकोट के रहने वाले मिर्जा गुलाम अहमद ने खलीफा होने का दावा किया। उसने मुख्यालय गुरदासपुर जिला के कस्बा कादियान में स्थापित किया। पाकिस्तान बनने के बाद अहमदी खलीफा भागकर पाकिस्तान चला गया। उसने अपना मुख्यालय पश्चिमी पाकिस्तान के जिला झंग में रूबुआ के स्थान पर स्थापित किया। आम मुसलमान अहमदियों को मजहबे–इस्लाम का अंग स्वीकार नहीं करते। 1958 में पाकिस्तान में अहमदिया विरोधी दंगे हुए जिनमें एक लाख से अधिक अहमदिया मारे गए। मिर्जा गुलाम अहमद के वंशज भागकर लन्दन चले गए। इस वंश के पांचवे खलीफा मसरूर अहमद लन्दन में रह रहे हैं। मगर उन्हें मुसलमानों के खलीफा के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है।

खास बात यह है कि मुगलों ने कभी भी उस्मानी खिलाफत को महत्व नहीं दिया। सम्भवतः भारत के मुगल सम्राट उस्मानिया सुल्तानों को अपने से श्रेष्ठ नहीं मानते थे। इसीलिए वे उनको खलीफा के रूप में मान्यता देने के लिए तैयार नहीं थे। मुगल सम्राट अकबर के बाद मुगलों ने अपनी राजधानी को दारालू खिलाफत (खलीफा का मुख्यालय) का नाम दिया। अकबर ने जो अपनी सोने की मोहरें जारी की उस पर लिखा गया 'महान सुल्तान, श्रेष्ठ खलीफा'। शाहजहां ने तुर्की के राजदूत अरसलान आगा को कोई महत्व नहीं दिया। इसे सुल्तान इब्राहिम ने भारत भेजा था। इसका कारण यह था कि इस पत्र में सुल्तान इब्राहिम ने अपने खलीफा होने का दावा किया था। हैरानी की बात यह है कि मुगल शंहशाह शाह आलम द्वितीय (1759 से 1806) का राज हालांकि सिर्फ दिल्ली तक ही सीमित था मगर फिर भी वह स्वयं को मुसलमानों का खलीफा लिखा करता था।

दूसरी ओर तुर्की के उस्मान वंश के शासक खलीफा होने का दावा करते रहे। प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की ने क्योंकि जर्मनी का साथ दिया था इसीलिए युद्ध में हार के बाद उस्मान वंश के शासकों का साम्राज्य विखंडित हो गया। खलीफा ने विभिन्न देशों के मुसलमानों से मदद मांगी मगर उसकी किसी ने मदद नहीं की। तुर्की के दो प्रदेशों बॉस्निया और हर्जेगोविना को ऑस्ट्रिया में मिला लिया गया। खास बात यह है कि शियाओं और खबराज ने सुन्नी खलीफाओं को कभी मान्यता नहीं दी। जहां तक सुन्नियों का सम्बन्ध है उन्हें भी खिलाफत के अन्तिम दिनों में इससे कोई सहानुभूति नहीं थी। सन् 1924 में जब कमाल आतातुर्क ने तुर्की में खिलाफत को समाप्त करने का ऐलान किया तो विश्वभर के इस्लामी देशों में इसके विरूद्ध कोई प्रतिक्रिया मुसलमानों में नहीं हुई। सिर्फ भारत ही ऐसा देश है, जिसमें महात्मा गांधी और कांग्रेस ने खिलाफत को पुनः बहाल करने के लिए देशभर में आन्दोलन चलाया। पूर्व प्रधानमंत्री चौ. चरण सिंह ने अपने एक भाषण में स्वीकार किया था कि खिलाफत आन्दोलन के

कारण भारत में मुस्लिम पृथकतावाद को प्रोत्साहन मिला और इसकी परिणति देश के विभाजन के रूप में हुई। एक नया मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान अस्तित्व में आ गया।

संदर्भ सूची

1. The Shade of Swords, M.J. Akbar.
2. Living Islam, Akbar S. Ahmed.
3. मिल्लते इस्लामिया का संक्षिप्त इतिहास, सरवत सौलत।
4. How the Khilafah was destroyed, Abdul Qadeem Zallum.
5. Brief History of Islam, Dr. Hasanuddin Ahmed.
6. A Short History of The Saracens, Syed Amir Ali.
7. मुंसिफ, 27 जून, 2014, मियां मोहम्मद अफजल।
8. तहरीक–ए–इस्लाम, मौलाना अकबर शाह नजीबाबादी।

5 इस्लामी जगत में विभाजन

मुसलमान शायद आज भी पुरानी इस्लामी परम्परा भूलने को तैयार नहीं हैं। इसीलिए नई खिलाफत के प्रश्न पर मुस्लिम जगत एक बार फिर बुरी तरह से विभाजित हो गया है। अलकायदा के नेता वर्षों से यह कह रहे हैं कि पूरे विश्व के मुसलमान इसीलिए बदहाल हैं क्योंकि उनके हितों की रक्षा करने के लिए आज कोई खिलाफत मौजूद नहीं है। खिलाफत ऐतिहासिक भी है और सैद्धांतिक भी। खलीफा का अर्थ है, 'मोहम्मद के उत्तराधिकारी का शासन।' खलीफा की तलवार के नींचे विशुद्ध इस्लामी कानून से शासन चलता था। यह कल्पना भले ही सैद्धांतिक रूप से सही है मगर खिलाफत के नाम पर मुसलमानों का जितना खून बहा है उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। खलीफा का पद प्राप्त करने के लिए भाई ने भाई को, बाप ने बेटे को, चाचा ने भतीजे को नहीं बख्शा। जो भी ताकतवर हुआ उसी ने कमजोर की हत्या करके खिलाफत को हथिया लिया। इस्लाम के आधे से अधिक खलीफा स्वाभाविक मौत नहीं मरे। उन्हें या तो विष दिया गया या फिर उनकी निर्मम हत्या कर दी गई। कई खलीफाओं को तो कैद में तिल–तिलकर मरना पड़ा। यह सब इस्लाम के खलीफा पद के दावेदारों ने ही किया, किसी गैर ने नहीं।

शायद यही कारण है कि आज भी इसी खूनी इतिहास को दोहराया जा रहा है। दौलत इस्लामिया ईराक और शाम का नामों–निशान मिटाने के लिए ईरान, लेबनान, सीरिया आदि शिया देश खुलकर मैदान में आ गए हैं। इराक के प्रधानमंत्री नूरी–उल–मुल्की ने नई खिलाफत का नामों–निशान मिटा देने की घोषणा की है। सीरिया के राष्ट्रपति बशर–अल–असद भी यही भाषा बोल रहे हैं। जमाते–इस्लामी हिन्द के जलालुद्दीन उस्मानी ने इस नई खिलाफत को धोखा करार दिया है। उनका कहना है कि इसका गठन किसी मजलिस–ए–शूरा ने विश्वभर के मुसलमानों की सहमति से नहीं किया गया है। इस्लामिक जगत के सबसे बड़े विद्वान यूसुफ अल कजावी ने दुबई में यह फतवा जारी किया था कि शाम और इराक की सरकारों के खिलाफ जंग करने वाले जिहादियों द्वारा घोषित खिलाफत इस्लामी शरिया के खिलाफ है।

इख्वानुल–मुस्लिमीन के चिंतक यूसुफ अल कजावी ने एक फतवा जारी करके कहा है कि खिलाफत उस्मानिया आखिरी सच्ची इस्लामी खिलाफत थी। उसके बाद खिलाफत के बारे में जो भी दावे किए गए वे सरासर झूठे हैं। खलीफा कौन होगा यह सारी मिल्लत इस्लामिया तय करती है। कोई एक गुट न तो खिलाफत का दावा कर सकता है और न ही किसी को खलीफा ही घोषित कर सकता है। यह इस्लाम की परम्पराओं और शरिया के उसूलों के सरासर खिलाफ है।

भारत में अंजुमन हैदरी ने इराक में जिहाद के लिए शिया नौजवानों को भारत से भेजने की जो घोषणा की है, उसका सुन्नी नेता एवं जमीयते उलेमा–हिन्द के महामंत्री मौलाना महमूद मदनी ने सख्त विरोध किया है। लखनऊ के दार–उल–उलूम नदवा के उप–प्रमुख सलमान नदवी ने नए खलीफा अबू बकर अल बगदादी को एक पत्र भेजकर उनका समर्थन किया है। जबकि ऑल इंडिया उलेमा मशाख बोर्ड के अध्यक्ष मौलाना सैयद मोहम्मद अशरफ ने भारत के कुछ नेताओं द्वारा नई खिलाफत का समर्थन करने का विरोध करते हुए कहा है कि बगदादी एक कुख्यात आतंकवादी है और जो लोग भारत में उसका समर्थन कर रहे हैं वे आतंकवाद का समर्थन कर रहे हैं। ये लोग सच्चे मुसलमान नहीं हैं क्योंकि इस्लाम आतंकवाद का कभी समर्थन नहीं करता। कश्मीर में जिस तरह से प्रदर्शनकारियों ने नई खिलाफत के झंड़े लेकर भारत सरकार के खिलाफ जिहाद छेड़ने की घोषणा की है वह बेहद खतरनाक है और उसे किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

अजीजुलहिन्द (24 जुलाई, 2014) के अनुसार तुर्की के धार्मिक मामलों के प्रमुख मोहम्मद गौर मीर ने कहा है कि इराक और शाम में जिस नई खिलाफत का ऐलान किया गया है, वह इस्लामी शरिया के खिलाफ है और इसे मुसलमानों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। गौर मीर ने कहा है कि तुर्की में उस्मानी खिलाफत के खात्मे के बाद विश्व में अनेक लोगों ने खलीफा होने का दावा किया। मगर ये सब दावे सिर्फ धोखा थे। इस्लामी शरिया के अनुसार ये दावे बेबुनियाद थे। खिलाफत का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति को खलीफा के रूप में आलम–ए–इस्लाम ने कभी मान्यता नहीं दी। उन्होंने कहा कि नई खिलाफत द्वारा ईसाईयों को खत्म करने के बारे में जो धमकियां दी जा रही हैं, वह इस्लाम के सिद्धांतों के सरासर खिलाफ है। उन्होंने कहा कि पश्चिमी देशों की नजर में खिलाफत पोप की भांति एक धार्मिक सत्ता है। जबकि इस्लाम के अनुसार खलीफा एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके पास धर्म के साथ–साथ शासन के अधिकार भी है और जो शरिया के अनुसार इन अधिकारों को लागू करता है। उनका यह भी कहना है कि अब विभिन्न देशों के मुसलमान शासक एक खलीफा के नियंत्रण में नहीं रह सकते। मगर वे यूरोपियन यूनियन की तरह एक राजनीति ब्लॉक

जरूर बना सकते हैं। उन्होंने कहा कि हर रोज हजारों मुसलमान अपने ही भाइयों के हाथों मारे जाते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने की जरूरत है।

दिल्ली के साप्ताहिक उर्दू समाचार–पत्र ने 21 जुलाई, 2014 के अंक में यह आशंका व्यक्त की है कि नए खलीफा और उसके संगठन आई.एस.आई.एस., का अलकायदा से संघर्ष होगा। मोसूल के खुतवा में स्वयंभू खलीफा इब्राहिम ने यह साफ कर दिया है कि अब इस्लामी विश्व में नया खलीफा ही सिरमौर होगा। उसने सभी मुस्लिम शासकों को यह निर्देश दिया है कि वह इस नए खलीफा की आज्ञा का पालन करें और अपने हथियार नए जिहादियों के सामने रख दें। उसने लोकतंत्र और राजतंत्र दोंनो को इस्लाम विरोधी बताया है। समाचार–पत्र ने लिखा है कि नए खलीफा और अलकायदा के बीच सम्बंध पहले ही काफी कटु हैं। इस वर्ष फरवरी माह में अलकायदा ने अल बगदादी से सम्बन्ध विच्छेद की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी थी क्योंकि अल बगदादी ने सीरिया के गृहयुद्ध से किनारा करने और खुद को इराक तक सीमित रखने का अलकायदा प्रमुख अयमान अल जवाहरी के हुक्म को मानने से इंकार कर दिया था। क्या इन इस्लामी संगठनों में गृहयुद्ध शुरू होगा? समस्या यह है कि खिलाफत और खलीफा के अस्तित्व में आने के बाद आई.एस.आई.एस. जिहादियों का एक विश्व संगठन बन गया है और इसमें दुनियाभर के मुसलमान नौजवान जिहाद में शामिल होने के लिए भर्ती हो रहे हैं। ओसामा बिन लादेन की हत्या के बाद अलकायदा के प्रभाव में निश्चित रूप से कमी हुई है। ओसामा बिन लादेन ने किसी इस्लामी देश में समानान्तर सरकार बनाने का प्रयास नहीं किया था। यह जरूर है कि वह दुनियाभर के मुसलमानों को एक झंडे तले एकत्रित करने की बातें जरूर करता रहा। मगर अब अल बगदादी ने समानान्तर सरकार बनाकर अलकायदा के सामने नई चुनौती पैदा कर दी है। अलकायदा के सामने अब सबसे बड़ी समस्या यह है कि विश्वभर के जिहादियों को नए खलीफा की शरण में जाने से कैसे रोका जाए। प्रेक्षकों का मत है कि अलकायदा इस नए खलीफा से दो–दो हाथ करने की तैयारी कर रहा है। अलकायदा सभी मुसलमानों को एकजुट करने की बात करता है तो अल बगदादी शियाओं का सख्त दुश्मन है। इससे पूर्व अलकायदा ने जब इराक का अमीर अबूल मोहसब अल जरवी को नियुक्त किया था तो उसने जब शियाओं को अपना निशाना बनाना शुरू किया तो उसने अलकायदा का नेतृत्व नाराज हो गया और उसे अमीर के पद से हटा दिया गया। कभी अलकायदा की जंग अमेरिका के खिलाफ थी मगर अब उसके जिहाद में आई.एस.आई.एस. का नाम भी शामिल हो गया है। इसी समाचार–पत्र ने 30 जून, 2014 के अंक में यह चेतावनी दी है कि मुसलमानों को कमजोर करने के लिए यहूदियों ने शिया और सुन्नियों में युद्ध शुरू कर दिया है। अमेरिका और ईरान कभी एक–दूसरे के दुश्मन माने

जाते थे मगर अब वे इस नई खिलाफत का मुकाबला करने के लिए एक–दूसरे के साथ हाथ मिलाने के लिए मजबूर हो रहे हैं। आई.एस.आई.एस. की बढ़ती हुई ताकत के कारण सउदी अरब से लेकर ईरान तक परेशान हैं। सवाल यह है कि ईरान और इराक दोनों मुसलमान देश हैं। दोनों ही एक अल्लाह, एक रसूल और एक किताब को मानते हैं। फिर ये एक–दूसरे से क्यों उलझ रहे हैं? कौन इन्हें आपस में लड़वा रहा है? शिया–सुन्नी विवाद को कौन हवा दे रहा है?

मुम्बई से प्रकाशित होने वाले *उर्दू टाइम्स* में रशीद अंसारी ने खुलकर नई खिलाफत का समर्थन किया है। उन्होंने यह आरोप लगाया है कि इस नए इस्लामी संगठन के खिलाफ पश्चिमी देश दुनियाभर में दुष्प्रचार कर रहे हैं। इसीलिए भारत के मुसलमानों को सच्चे इस्लाम की स्थापना के लिए इसका समर्थन करना चाहिए। जहां तक भारत से प्रकाशित होने वाले अधिकांश उर्दू समाचार–पत्रों की राय है कि वे इस नई खिलाफत को ज्यादा महत्व नहीं दे रहे हैं। उनका कहना है कि यह नई खिलाफत और दौलत इस्लामिया ईराक और सीरिया का शोशा अमेरिका और ईजरायल ने मिलकर छेड़ा है ताकि मुस्लिम देशों की एकता को तार–तार किया जा सके। कोई मुस्लिम देश इस स्थिति में न रहे कि वह अमेरिका और ईजरायल की मनमानियों का विरोध कर सके। ईसाई और यहूदी मिलकर मुसलमानों को मुसलमानों के हाथों ही मरवाना चाहते हैं।

उर्दू टाइम्स ने 21 जून, 2014 के अंक में यह आरोप लगाया है कि अमेरिका और ईजरायल मिलकर इराक को तीन भागों में विभाजित करना चाहते हैं। इसमें से एक हिस्से पर कुर्दों का नियंत्रण होगा, जबकि अन्य दो हिस्से शियों और सुन्नियों के नियंत्रण में रहेंगे। दुनिया के मुसलमानों को एकजुट होकर इस साजिश का विरोध करना चाहिए। जमाते इस्लामी के मुखपत्र *दावत* ने 25 जून, 2014 के अंक में आरोप लगाया है कि सद्दाम हुसैन के पतन के बाद इराक में अमेरिका के इशारे पर जो शिया सरकार बनी, उसने 20 प्रतिशत सुन्नियों के अधिकारों की उपेक्षा की। इसके कारण सुन्नियों को विवश होकर इराक की वर्तमान सरकार के खिलाफ हथियार उठाने पड़े। खास बात यह है कि इस सुन्नी संगठन ने सिरिया की असद सरकार को भी निशाना बनाया है। उनका कहना है कि सिरिया में सुन्नियों का जिस तरह से खून बहाया जा रहा था, उसकी प्रतिक्रिया के रूप में इस नई खिलाफत का संगठन हुआ है। खास बात यह है कि एक ओर तो शिया अल बगदादी के जिहादियों का मुकाबला करने के लिए शिया नौजवानों को ईराक भेजने के दावे कर रहे हैं। जबकि दूसरी ओर सुन्नी सम्प्रदाय के नेताओं का सारा जोर इस बात पर है कि ईराक में संघर्ष शिया–सुन्नी के बीच नहीं है बल्कि यह सब विश्व की ईसाई और यहूदी शक्तियों के गठजोड़ के इशारे पर हो रहा है और इसका लक्ष्य मुसलमानों को बर्बाद करना है।

ईराक में नई खिलाफत के जिहादियों द्वारा सामूहिक रूप से शियाओं की निर्मम हत्याएं की जा रही है और उनके शरीर के विभिन्न अंगों को सार्वजनिक रूप से काटा जा रहा है। शियाओं के पवित्र स्थानों को जिस तरह से मटियामेट किया जा रहा है, उसे देखकर मानवता कांप उठती है। इन्सान–इन्सान का इस तरह से निर्ममतापूर्वक खून कब तक बहाता रहेगा? इसे रोकने की जरूरत है। अमेरिका इराक में जो खूनी खेल खेल रहा है अगर उस पर लगाम नहीं लगाया गया तो उसके बेहद गम्भीर परिणाम होंगे। सारे विश्व में शिया और सुन्नियों के बीच युद्ध कभी भी भड़क सकता है। इस युद्ध से अमेरिका और पश्चिमी देश भी नहीं बच पाएंगे।

तुर्की का रुख बड़ा अजीब है। एक ओर तो उसके राष्ट्रपति ने इस नई खिलाफत का विरोध किया है मगर दूसरी ओर वह दौलत इस्लामिया इराक व शाम को गुप्त रूप से समर्थन भी दे रहा है और उसकी आर्थिक व अस्त्रों–शस्त्रों से मदद भी कर रहा है। इस बात को कौन नहीं जानता कि सउदी अरब में इस समय जिस वंश का शासन है वह भी सलाफी विचारधारा से सम्बन्धित है। यही कारण है कि सउदी अरब सरकार खुलेआम नई खिलाफत का न सिर्फ समर्थन कर रही है बल्कि उसे हर तरह की मदद भी उपलब्ध करा रही है। सउदी सरकार के इस रुख के कारण खाड़ी और पश्चिमी एशिया के छोटे–छोटे मुस्लिम देश भयभीत हैं। उन्हें इस बात का भय है कि इस्लामी शासन की स्थापना की आड़ में अरब जगत और खाड़ी देशों में स्थित इस्लामी शासकों का तख्ता पलटकर उनके क्षेत्र पर अपना कब्जा जमाना चाहता है। यही कारण है कि ओमान, यमन, कतर, यूएई जैसे सुन्नी देश भी अल बगदादी की नई खिलाफत का विरोध कर रहे हैं और अपनी रक्षा के लिए पश्चिमी देशों के साथ–साथ अमेरिका से सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। हाल में पुराने सोवियत रूस के मुस्लिम बहुल राज्यों में जो जातीय जुनून बढ़ा है और इसके कारण इस क्षेत्र के शासकों की भी नींद हराम हो गई है। प्रस्तावित खिलाफत के मानचित्र में पुराने सोवियत रूस का 80 प्रतिशत भाग शामिल किया गया है। शायद यही कारण है कि रूस ने ईराक की नूरी अल–मुल्की सरकार को आधुनिक लड़ाकू विमान उपलब्ध कराए हैं।

नए स्वयं–भू खलीफा अबू बकर अल बगदादी उर्फ खलीफा इब्राहीम ने यह दावा किया है कि नई खिलाफत का विस्तार स्पेन से लेकर इंडोनेशिया तक होगा। उसने यह भी कहा है कि इस्लाम विभिन्न देशों की राष्ट्रीय सीमाओं को नहीं मानता। हमारे लिए सारी दुनिया और मुस्लिम उम्मा एक है। उनके इस दावे से यूरोप, अफ्रीका के ईसाई देश भयभीत हैं। यही स्थिति मध्य एशिया, चीन और भारत की भी है। उन्हें इस बात का भय है कि इस्लाम के जिहादी जवान उनके लिए मुसीबत का कारण बन सकते हैं। नई खिलाफत ने अपने प्रचार के लिए एक नया संगठन अल हयात मीडिया बनाया है। इस

संगठन का दावा है कि नई खिलाफत की सेनाओं में यूरोप, अमेरिका, पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया, पाकिस्तान, तुर्की, अफगानिस्तान, कजाकिस्तान, उजबेकिस्तान, चीन, भारत आदि डेढ़ दर्जन से अधिक देशों के नौजवान जिहाद में हिस्सा लेने के लिए इराक व सीरिया पहुंच रहे हैं। इस समाचार से इन देशों की सुरक्षा एजेंसियां चौकन्नी हो गई हैं। अमेरिकन सुरक्षा एजेंसी एफ.बी.आई ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कुछ अमेरिकी मूल के मुसलमान अमेरिकी नौजवानों को जिहाद में हिस्सा लेने के लिए उकसा रहे हैं। ब्रिटेन ने तो लेबनान के रहने वाले एक मुस्लिम नेता के देश में दाखिले पर ही प्रतिबंध लगा दिया है। क्योंकि ब्रिटेन की गुप्तचर एजेंसी का दावा है कि इस व्यक्ति ने पिछले वर्ष सौ से अधिक ब्रिटिश नौजवानों को गुमराह कर आई.एस.आई. एस. की सेनाओं में भर्ती होने के लिए सीरिया भिजवाया था। फ्रांस की सरकार ने भी यह दावा किया है कि उसके तीन सौ से अधिक नागरिक ईराक में जिहादियों की ओर से लड़ रहे हैं और 500 वहां जाने की तैयारी कर रहे हैं। जर्मनी से प्राप्त सरकारी सूत्रों के अनुसार कम से कम 350 मुसलमान इस वक्त सीरिया के युद्ध में भाग ले रहे हैं। भारत सरकार ने हालांकि इस जिहाद में शामिल होने वालों के बारे में जांच करना शुरू किया है, परन्तु अभी तक हमारे इस बात की पुष्टि नहीं है कि कितने भारतीय जिहादियों की ओर से जिहाद में हिस्सा ले रहे हैं। सरकारी एजेंसियां अभी तक ऐसे तीन सौ जवानों का पता लगा चुकी है, जो जिहादियों की ओर से लड़ रहे हैं। मगर अभी तक इस बात का पता नहीं लगा या जा सका है कि इनको वहां भिजवाने में देश के किन संगठनों का हाथ है, जिनके इस जिहादी संगठन से नजदीकी सम्बन्ध जुड़े हुए हैं।

देश के मुस्लिम नेता भले ही इस बात से इन्कार करें कि सीरिया और ईराक में उपजे विवाद के पीछे इस्लाम के विभिन्न सम्प्रदायों के भीतर उत्पन्न होने वाले विवाद का हाथ नहीं है। मगर सच्चाई यही है कि गत 1,300 वर्षों से शिया और सुन्नियों के बीच जो संघर्ष चल रहा है, उसने अब नया मोड़ ले लिया है। शिया–सुन्नी विवाद हजरत मुहम्मद के निधन के साथ 632 ईसवी में ही शुरू हो गया था। अरबी भाषा में शिया का अर्थ साथी होता है, 'पैगम्बर मोहम्मद के साथी'। शिया–सुन्नी विवाद की शुरुआत के बारे में कहा जाता है कि जब, शियाओं के अनुसार, हजरत मुहम्मद की इच्छा को नजरअंदाज करके उनके ससुर अबू बकर को इस्लाम का पहला खलीफा बना दिया गया। इसके बाद खिलाफत की जिम्मेवारी हजरत उमर ने सम्भाली जोकि रसूल के नजदीकी सम्बन्धी थे। हजरत उमर की हत्या के बाद पैगम्बर के एक अन्य रिश्तेदार उस्मान को खलीफा बनाया गया। उस्मान की अली के समर्थकों ने हत्या कर दी। सुन्नी इन तीनों खलीफाओं को मान्यता नहीं देते। उनका आरोप है कि इन्हें जबरन

मुसलमानों पर थोपा गया था जबकि पैगम्बर ने अपने दामाद हजरत अली को खलीफा बनाने के बारे में इच्छा व्यक्त करते हुए वसीयत की थी। शियाओं का विश्वास है कि इस्लाम के असली खलीफा हजरत अली और उसके वंशज ही हैं, जबकि सुन्नी उनके इस दावे को स्वीकार नहीं करते। हजरत अली की हत्या के बाद फिर खिलाफत पर शिया और सुन्नियों का विवाद शुरू हो गया। हजरत अली के बाद अमीर मुजावीय खलीफा बनें। सरवत सौलत नामक इस्लामी विद्वान ने अपने ग्रंथ *मिल्लते इस्लामिया* के इतिहास में यह स्वीकार किया है, 'अमीर मुजावीय मुसलमानों के चुने हुए खलीफा नहीं थे बल्कि उन्होंने ताकत के जोर से खिलाफत हासिल की थी। जब वह खलीफा बन गए तो लोगों ने मजबूरन बैअत कर ली।' मुजावीय अली के उत्तराधिकारी बने। कर्बला के मैदान में अली के सारे परिवार की निर्ममतापूर्वक हत्या कर दी गई। पैगम्बर इस्लाम के परिवार की महिलाओं को जान बचाने के लिए दमिश्क में शरण लेनी पड़ी। इसके बाद शिया और सुन्नी में विवाद बढ़ता ही गया। शिया 12 इमामों को मान्यता देते हैं। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित इस्लामी इतिहास के अनुसार, इन इमामों में से नौ इमामों की हत्या सुन्नियों द्वारा की गई। इनमें से कोई भी इमाम ऐसा नहीं था, जिसने सुन्नी खलीफाओं के शासनकाल में कैद न काटी हो या जिसे विष देकर मारा न गया हो। इससे शिया–सुन्नियों में राजनैतिक और धार्मिक मतभेद बढ़ते ही गए। गत 14 सौ वर्षों से यह संघर्ष थमने का नाम नहीं ले रहा है।

विख्यात् सुन्नी विद्वान शेख सुलेमान अल कलदुझी ने अपनी पुस्तक *'यानबी–ए–अल–मुताबा'* में कहा है कि एक यहूदी नाथल पैगम्बर के पास गया और उनसे पूछा कि उनका कौन उत्तराधिकारी होगा। पैगम्बर ने कहा, 'मेरे बाद अली बिन अबीतालिब और उसके बाद उसके दो पुत्र हसन और हुसैन एवं नौ इमाम होंगे।' एक अन्य परम्परा के अनुसार एक किताब *मनखिब* में यह दावा किया गया है कि 12वें इमाम मैदी गय्याबी होंगे और बाद में न्याय और उत्पीड़न के खात्मे के लिए दुनियाभर के लोगों को न्याय देने के उद्देश्य से वह प्रकट होंगे।

शिया धर्मग्रंथों के अनुसार पहले इमाम अली अल मुसतफा हैं। उनका जन्म काबा में हुआ और कूफा में रमजान के महीने के दौरान मस्जिद के भीतर कुरान पढ़ते हुए उनकी हत्या कर दी गई और उन्हें नजफ में दफनाया गया। दूसरे इमाम हसन थे। उनका जन्म भी रमजान के महीने में मदीना में हुआ। उनकी भी निर्ममतापूर्वक हत्या की गई और उन्हें मदीना में दफना दिया गया। तीसरे इमाम हुसैन थे। उनका जन्म भी मदीना में हुआ और उनकी भी करबला के मैदान में अमी मुजावीय के आदेश पर निर्ममतापूर्वक हत्या की गई। उनका मकबरा करबला में है। चौथा इमाम अली जियान अल अबदीन हैं। उनका भी जन्म मदीना में हुआ। उन्हें जहर देकर मारा दिया गया

और मदीना में उनके चाचा की कब्र के समीप दफना दिया गया। पांचवें इमाम मुहम्मद अल बाकर हुए। इनका जन्म भी मदीना में हुआ और उनकी भी जहर देकर हत्या की गई। उन्हें भी मदीना में ही दफन किया गया। छठे इमाम जफर अल सादिक हुए। ये भी मदीना में पैदा हुए और उन्हें भी जहर देकर मारा गया और मदीना में दफनाया गया। सातवें इमाम मूसा अल काजिम हुए। उन्हें सात वर्ष तक खलीफा हारून रशीद ने कैद रखा। इसके बाद जहर देकर उनकी हत्या कर दी गई। उन्हें बगदाद के काजिमान क्षेत्र में दफनाया गया। आठवें इमाम अली अल रजा हुए। खलीफा मामू रशीद के हुकूम से जहर देकर उनकी हत्या की गई और ईरान में खुरासान के स्थान पर उन्हें दफन किया गया। नौवें इमाम मुहम्मद तकी हुए। उनकी भी खलीफा के आदेश से हत्या की गई। इराक में समराह के स्थान पर दफन हुए। दसवें इमाम अली अल नक्की हुए। उनकी भी सुन्नियों ने हत्या की और उन्हें समराह में दफनाया गया। ग्यारहवें इमाम हसन अल असकरी हुए। उन्हें भी जहर देकर मारा गया और सफराह में ही दफनाया गया। बारहवें इमाम मुहम्मद अल मेहदी हुए। वह शियाओं के आखिरी इमाम थे, जिनके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह हमेशा जीवित रहकर अदृश्य रूप से कौम की रहनुमाई करेंगे। कयामत से पूर्व वह मेहदी के रूप में प्रकट होकर मिल्लत के सभी लोगों को इंसाफ दिलाएंगे।

शियाओं के लिए सभी ग्यारह इमामों के मकबरे उनके लिए जियारतगाह हैं। इनमें से जिन चार इमामों को मदीना में दफनाया गया था। सुन्नियों के वहाबी सम्प्रदाय ने सत्ता में आने के बाद उनकी कब्रों को खोदकर उनका नामों–निशान मिटा दिया। सलाफी विचारधारा के समर्थक सउदी अरब के शासकों ने पैगम्बर इस्लाम की पत्नियों और उनके सहयोगियों के मकबरों के साथ भी यही सलूक किया। जबकि शेष इमामों के मकबरे इराक में हैं और उनकी जियारत करने के लिए दुनियाभर के शिया ईराक जाते हैं।

विश्व में शियाओं की आबादी सुन्नियों से कम है। मगर जहां तक तेल की सम्पदा का सम्बन्ध है उनका अधिकांश हिस्सा शियाओं द्वारा शासित देशों में है। शुरू में शिया–सुन्नी एक ही मस्जिद में नमाज पढ़ा करते थे। उनके बीच विवाह सम्बन्ध भी होते थे। मगर धीरे–धीरे ये सम्प्रदाय एक–दूसरे से दूर चले गए और एक–दूसरे के घोर शत्रु बन गए।

हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक पीपुल्स के अनुसार शियाओं ने ईरान में अपना शासन स्थापित किया था। सफवी वंश के इन शासकों ने इस असहफान को अपनी राजधानी बनाया। इसके बाद मोरक्को में इदरीसिया नामक वंश की हुकूमत स्थापित हुई। इस वंश ने यूरोप तक अपने साम्राज्य को फैलाया। इराक के सुन्नी शासक आबासियों के साथ

इनके सम्बन्ध बेहद शत्रुतापूर्ण थे। इनके साथ उनकी झड़पें होती रहीं। लिबिया में जैदी वंश ने अपना शासन स्थापित किया। पश्चिमी एशिया में तिबरिस्तान में भी शिया साम्राज्य स्थापित हुआ। मगर वह ज्यादा देर तक टिक न सका। शियाओं का सबसे सशक्त साम्राज्य मिस्र में स्थापित हुआ जिसे इतिहास में फातिमी सल्तनत के नाम से जाना जाता है। इनका साम्राज्य सूडान और *ट्यूनिशिया* तक था। नौवीं शताब्दी में यामामा में शियाओं की सरकार स्थापित हुई। ये लोग अपने आप को अल्वी कहते थे। 10वीं शताब्दी में अली बिन बोया ने जिल्लान नामक नगर में अपना शासन स्थापित किया। शिया यूरोप तक पहुंच गए। सिसिली में कलवी वंश ने सरकार बनाई। यमन भी शिया शासकों के नियंत्रण में रहा।

जहां तक भारत का सम्बंध है, पहली शिया सरकार बीजापुर में कायम हुई और इतिहासकार इसे बहमनी सल्तनत का नाम देते हैं। इसके संस्थापक हसन गंगू बहमनी थे। इसी तरह से गोलकंडा, उत्तर प्रदेश में जौनपुर, बरार, बीदर, अहमदनगर में भी शियाओं का शासन स्थापित हुआ। अवध, रामपुर और सिंध के तालपुर के शासक भी शिया ही थे।

अधिकृत सूचनाओं के अनुसार ईरान में सबसे अधिक शिया आबादी है, जो सात करोड़ बताई जाती है। पाकिस्तान में तीन करोड़ शिया हैं, भारत में इनकी संख्या का अनुमान सवा करोड़ से लेकर ढाई करोड़ तक लगाया जाता है। इराक में सवा दो करोड़ शिया हैं। जबकि सउदी अरब में इनकी संख्या तीस लाख, नाइजीरिया में 40 लाख, लेबनान में 20 लाख, तनजानिया में 10 लाख हैं। शेष शिया आबादी अन्य स्थानों में बसी हुई है। शिया नेताओं का दावा है कि कुल मुस्लिम आबादी में से शियाओं का अनुपात 35 से 40 प्रतिशत है। मगर उनके इस दावे को सुन्नी को स्वीकार नहीं करते। विश्व में शियाओं के मुकाबले में सुन्नियों का अधिक वर्चस्व है।

जहां तक सुन्नी मुसलमानों का सम्बन्ध है, उनकी संख्या सबसे अधिक बताई जाती है। उन्हें अहिल अल सुन्ना कहा जाता है। सुन्नी शब्द सुन्ना से बना है। जिसका अर्थ है, हजरत मुहम्मद की शिक्षा एवं उनके जीवन की घटनाओं को मार्गदर्शक मानना। सुन्नी का मोटे शब्दों में अर्थ यह है कि वे लोग जो हजरत मुहम्मद की शिक्षाओं और जीवन का सख्ती से अनुसरण करते हैं। उनका विश्वास है कि इस्लाम के पहले चारों खलीफा को खिलाफते राशिदा की संज्ञा दी गई है। सुन्नियों का दावा है कि यह युग एक प्रजातांत्रिक और कल्याणकारी था। सरवत सौलत ने मिल्लते इस्लामिया के इतिहास में यह दावा किया है, इस्लाम के पहले चार खलीफाओं ने प्रशासन, राजनीति और समाज–सुधार के मैदान में जो कारनामे अंजाम दिए वे न केवल इस्लामी इतिहास

बल्कि विश्व इतिहास में संगे मील की हैसियत रखते हैं। खिलाफते राशिदा की राजनीतिक व्यवस्था और सामूहिक जीवन व्यवस्था की बुनियाद वही थी जो अहदे रिसालत में रखी गई थी। खिलाफते राशिदा ने इस बुनियाद पर एक शानदार इमारत खड़ी कर दी और दुनिया को यह बता दिया कि इस्लाम की राजनैतिक और सामूहिक जीवन व्यवस्था सिर्फ अरब के लोगों के लिए नहीं बल्कि दुनियाभर के लिए है। इस्लाम रहमत और भलाई का पैगाम सिद्ध हुआ। इस्लामी विद्वानों के अनुसार पैगम्बर मुहम्मद ने यह भविष्यवाणी की थी कि उनके अनुयायी 73 सम्प्रदायों में विभाजित होंगे मगर उनमें से अंत में सिर्फ एक सम्प्रदाय ही बचेगा। (इबन माजा अबू दाउद, अल–तरमीदी)। एक अन्य विद्वान फखरुद्दीन राजी के अनुसार मुस्लिम मसलकों (सम्प्रदायों की संख्या 72 है)।

जमते–इस्लामी हिन्द द्वारा प्रकाशित *मुस्लिम विश्व* नामक पुस्तक के अनुसार दुनिया में मुसलमानों की आबादी 1 अरब 56 करोड़ 66 लाख 3 हजार है। इसमें से 70 प्रतिशत से अधिक सुन्नी मुसलमान हैं। एशिया के 58 देशों में मुसलमान मौजूद हैं तो अफ्रीका के 59 देशों में मुस्लिम आबादी मौजूद है। उत्तरी अमेरिका के 44 देशों में मुसलमान बसे हुए हैं जबकि दक्षिणी अमेरिका के 15 देशों में मुसलमानों की जनसंख्या है। विश्व में 71 देशों ऐसे हैं जिनमें मुसलमान बहुसंख्या में हैं। सुन्नियों की सबसे ज्यादा संख्या इंडोनेशिया में है। यहां पर मुसलमानों की संख्या 20 करोड़ बताई जाती है। दूसरे नम्बर पर पाकिस्तान है और वहीं तीसरे स्थान पर भारत है। यहां पर 16 करोड़ मुसलमान रहते हैं। पाकिस्तान में 17 करोड़ मुसलमान रहते हैं। बांग्लादेश में 15 करोड़ मुसलमान हैं। संसार में ऐसे 47 देश हैं जहां पर सुन्नियों का शासन है।

संदर्भ सूची

1. द इंडियन एक्सप्रेस, 19 अक्टूबर, 2014।
2. सियासत, 19 नवम्बर, 2014।
3. नई दुनिया, 06 अक्टूबर, 2014।
4. हिन्दुस्तान एक्सप्रेस, 15 सितम्बर, 2014।
5. मुंसिफ, 06 जुलाई, 2014।
6. A Short History of the Saracens, Syed Amir Ali.
7. A Brief History of Islam, Dr. Hasanuddin Ahmed.
8. इस्लाम का इतिहास, मौलवी करीमुद्दीन अहमद।
9. The Shades of Swords, M.J. Akbar.

6 कौन हैं ये यजीदी?

इराक और सीरिया में स्थापित दौलत इस्लामिया ईराक और शाम ने सीरिया और इराक में रहने वाले निरीह यजीदी सम्प्रदाय पर धर्मान्तरण के लिए जो अत्याचार शुरू किए हैं, उनसे किसी भी व्यक्ति के रोंगटे खड़े हो सकते हैं। अब तक इस्लाम के जिहादी दस हजार से अधिक निर्दोष और मासूम यजीदियों की निर्मम हत्याएं कर चुके हैं। पुरुषों की हत्या से पूर्व उनकी महिलाओं और बच्चियों से ये खूंखार दरिन्दे सामूहिक बलात्कार करते हैं और इस शर्मनाक दृश्य को देखने के लिए इन अबलाओं के परिवारजनों को बन्दूक की नोंक पर मजबूर किया जाता है। इस सामूहिक बलात्कार के बाद मर्दों और लड़कों को गोली मार दी जाती है जबकि महिलाओं, किशोरियों और बच्चियों को गुलाम बनाकर बाजारों में भेड़–बकरियों की तरह बेचा जाता है। इन बेचारी निरीह महिलाओं और उनकी बच्चियों से जबरन निकाह किए जाते हैं। जो औरत या बच्ची बलात्कार का विरोध करती है उसे अन्य महिलाओं के सामने टुकड़े–टुकड़े कर दिया जाता है। खास बात यह है कि इस दरिन्दगी को कुरान और हसीद के अनुसार ये जिहादी उचित ठहराते हैं। उनका कहना है कि कुरान के अनुसार सभी गैर–मुशरिक (गैर–मुसलमान) महिलाएं और लड़कियां इस्लाम के जिहादियों की सम्पत्ति होती हैं। उनसे बलात्कार करने और उन्हें दासियों के रूप में बेचने की अनुमति हदीस और कुरान ने दे रखी है। इन दरिन्दों की नजर मे 6–6, 7–7 वर्ष की बच्चियों के साथ भी सामूहिक बलात्कार करना इस्लाम के अनुसार जायज है। इन बेचारी लड़कियों को अत्याचारों का शिकार बनाने के मामले में भी वह कुरान और हदीस की दुहाई देते हैं। उनके अनुसार कुरान में इस बात की स्पष्ट शब्दों में अनुमति है कि गुलाम औरतों के साथ उनके मालिक न सिर्फ बलात्कार ही कर सकते हैं बल्कि उन्हें जो चाहें सजा भी दे सकते हैं और अगर इस सजा के दौरान में इन बेचारियों की मौत हो जाए तो वह भी इस्लाम के अनुसार जायज है।

आखिर कौन है यह यजीदी सम्प्रदाय जो इन इस्लामी जिहादियों की दरिंदगी का इस तरह से शिकार हो रहा है? मानव अधिकारों के रक्षक होने का दावा करने वाले लोगों

के लिए मुंह पर क्यों ताले लगे हुए हैं? जो नई इस्लामी खिलाफत के इन दरिन्दे अनुयायियों के काले कारनामों के बारे में जुबान तक खोलने के लिए तैयार नहीं हैं। सच तो यह है कि पिछले 1,400 साल से यजीदी सम्प्रदाय इस्लामी जिहादियों के अत्याचारों का शिकार बना हुआ है। सवाल यह पैदा होता है कि यह यजीदी सम्प्रदाय है कौन? इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर हालांकि अंग्रेजी में साहित्य उपलब्ध नहीं है मगर फ्रांसीसी और जर्मन विद्वानों ने इस सम्प्रदाय पर काफी खोज की है। इस सन्दर्भ में दर्जनों पुस्तकें इन दोनों भाषाओं में उपलब्ध हैं। इन पुस्तकों में यह दावा किया गया है कि यह यजीदी मूल रूप से हिन्दू हैं। इनका मूल स्थान कभी भारत भूमि था। हजारों वर्ष पूर्व विदेशी आक्रान्ताओं ने उन्हें मातृभूमि से पलायन करने के लिए विवश किया। इसके बाद यह लोग एशिया और यूरोप के अनेक देशों में दर–दर भटक रहे हैं। इस सम्प्रदाय को एशिया और यूरोप की अधिकांश सरकारें अपने नागरिक अधिकार तक प्रदान करने के लिए तैयार नहीं हैं।

यहां पर यह स्पष्ट करना भी बेहद जरूरी है कि इस सम्प्रदाय के खिलाफ मुस्लिम जगत में घृणा पैदा करने के लिए शताब्दियों से इनके खिलाफ दुष्प्रचार किया जा रहा है। इन बेचारों का खलीफा यजीदी से दूर–दूर तक कोई नाता नहीं है। यजीदी वह खलीफा है, जिसके आदेश पर करबला के मैदान में हजरत मोहम्मद के नातियों हसन, हुसैन और अब्बास आदि के परिवारों को एक–एक बूंद पानी के लिए तड़पाकर शहीद किया था। इसलिए यजीदियों के प्रति मुसलमानों में भारी घृणा की भावना है। इसके अतिरिक्त इस्लामी जिहादियों द्वारा शताब्दियों से यह झूठा प्रचार किया जा रहा है कि यह यजीदी सम्प्रदाय शैतान का उपासक है। हालांकि यह सब सरासर झूठा प्रचार है और इसका लक्ष्य हर मुसलमान की नजर में इस सम्प्रदाय को घृणा के पात्र के रूप में

आई.एस.आई.एस. आतंकवादियों द्वारा यजीदियों की सामूहिक हत्या का एक दृश्य।
सौजन्य : द शिया पोस्ट, 10 अगस्त, 2014

पेश करना है, ताकि इस्लामी दरिंदों द्वारा इन पर ढहाये जाने वाले अत्याचारों के खिलाफ कोई मुसलमान आवाज न उठाये।

इन यजीदियों की हालत यूरोप के कई दर्जन देशों में फैले हुए उन भारतीय मूल के जिप्सियों जैसी है, जोकि स्वयं को रोमा कहते हैं। इनके सम्बन्ध में हाल में ही श्याम सिंह शशि और अनेक भारतीय विद्वानों ने जो अनुसन्धान किया है उससे यह सिद्ध होता है कि यूरोप भर में बेघर और बेसहारा भटकने वाले इन लाखों लोगों के पूर्वज हिन्दू थे। इन्हें इस्लामी आक्रान्ताओं ने पंजाब, राजस्थान और उत्तरी भारत के अन्य राज्यों से विजय प्राप्त करने के बाद गुलामों के रूप में गजनी, हिरात, समरकन्द, काश्गर, बुखारा आदि ले जाकर भेड़–बकरियों की तरह अरब सौदागरों को दास और दासियों के रूप में बेचा था। ये अरब सौदागर अपने गुलामों और दासियों को एशिया और यूरोप के अन्य देशों में ले गए और उन्हें वहां पर बाजार सजाकर सरेआम नीलाम किया गया था। ये जिप्सी इन्हीं भाग्यहीन हिन्दुओं की सन्तानें हैं। दुःख की बात तो यह है कि लोकतन्त्र और मानव अधिकारों की दुहाई देने वाले यूरोपीय देश भी इस घुमंतू सम्प्रदाय को अपने देशों की नागरिकता देने के लिए तैयार तक नहीं है। ये ऐसे भाग्यहीन लोग हैं, जिनका कोई अपना देश नहीं है। यही कारण है कि आज भी यूरोप के तथाकथित विकासशील देशों में इन जिप्सियों की हत्या को अपराध नहीं माना जाता।

जहां तक यजीदियों का सम्बन्ध है इनकी संख्या 20 से 25 लाख बताई जाती है। ये ईराक, सीरिया, जर्मनी, रूस, अरमानिया, जॉर्जिया, नीदरलैंड और स्वीडन आदि देशों में रह रहे हैं। इनकी एक विशेष भाषा है जोकि अनेक भाषाओं का समूह है। यह भाषा कुमारजी कहलाती है। इसे अनेक लिपियों में लिखा जाता है। इनमें भारी संख्या में संस्कृत, प्राकृत, पाली, अरबी, रूसी, फारसी आदि अनेक भाषाओं के शब्द शामिल हैं। यजीदी कहलाने वाले ये लोग स्वयं को इजीदीती कहते हैं। मुख्य रूप से यह सम्प्रदाय मूर्तिपूजक है। इनका मुख्य देवता सूर्य है, जिन्हें ये मित्र कहते हैं। उल्लेखनीय है कि संस्कृत में सूर्य को मित्र भी कहा जाता है। इनके सात देवता हैं जिनकी पूजा मन्दिरों में की जाती है। इन मन्दिरों में उनके एक अन्य मुख्य देवता मलिक ताउस है, जिसकी सवारी मोर है। मुसलमानों द्वारा इसी देवता को शैतान बताया जाता है। हालांकि यजीदियों का कहना है कि उनके इस देवता का शैतान से दूर–दूर तक कोई वास्ता नहीं है। मलिक ताउस लोगों को ईश्वर की उपासना की ओर प्रेरित करता है। यजीदी एक भगवान में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि इस संसार की रचना भगवान ने की थी और इसके बाद उसने इस संसार को 7 देवताओं को सौंप दिया। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन दिनों यजीदी जिस धर्म का पालन करते हैं, उस

पर प्राचीन पारसी धर्म, ईसाईयत और इस्लाम के साथ–साथ यहूदी धर्म की भी छाप है। इन यजीदियों का यह भी मानना है कि इनकी पवित्र पुस्तक का नाम पुस्तकों में *किताबिक किलबा* और *मिस्फा रिश* शामिल है। इन मन्दिरों की शक्ल हिन्दू देवालयों से काफी हद तक मिलती हैं। यह ऐसा सम्प्रदाय है जोकि आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त में आस्था रखता है। इनका मानना है कि मरने के बाद अपने कर्मों के अनुसार आत्मा नया चोला धारण करती है। उनकी भाषा कुमारणजी में कल किफराश, गूहोरीन की संज्ञा पुनर्जन्म को दी जाती है। इनका मानना है कि जिस तरह से इंसान पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्र धारण करता है उसी तरह से आत्मा भी नया जन्म लेती है। आत्मा अजर–अमर है। मगर उसे कर्मों के आधार पर कुछ देर नर्क या स्वर्ग में भी काटना होता है। खास बात यह है कि इस्लाम और ईसाई मजहब दोनों ही आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते। इन दोनों मजहबों को मानने वालों की इस बात में आस्था है कि मरने के बाद जब आत्मा का दफन कर दिया जाता है तो वह प्रलय तक अपनी कब्र में आराम करती रहती है। प्रलय से पूर्व एक देवदूत एक विशेष साज बजाता है, जिसको सुनकर कब्रों में सोने वाली आत्मायें पुनः जीवित हो जाती हैं। फरिश्ते उनके पुण्य और पापों की गणना करने के बाद इन आत्माओं को स्थाई रूप में स्वर्ग या नर्क में भेज देते हैं। आत्मायें स्वर्ग और नर्क में अपने इमाल (कर्मों) के अनुसार अनिश्चितकाल तक या तो नर्क की आग में जलती रहती हैं या फिर स्वर्ग में ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं।

इस सन्दर्भ में एक और बात का उल्लेख करना भी जरूरी है। वह यह है कि इस सम्प्रदाय में हिन्दुओं की भांति आज भी वर्णव्यवस्था है। एक जाति दूसरी जाति के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं रखती। इसके अतिरिक्त मातृ और पितृकुल के गोत्रों में भी विवाह, शादी करने की मनाही है। यजीदी दिन में पांच बार मन्दिर में जाकर प्रार्थना करते हैं और यदि किसी कारण से मन्दिर जाना सम्भव नहीं होता तो वह पूर्व की ओर मुंह करके सूर्य की उपासना करते हैं। यजीदी लोग काले, गहरे नीले रंग के कपड़ों का इस्तेमाल नहीं करते और उन्हें अशुभ मानते हैं। यजीदियों का एक वर्ग मांसाहारी नहीं है बल्कि शुद्ध शाकाहारी है। इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध पुजारी जाति से होता है। शासक जाति मीर कहलाती है, जबकि पुजारी सम्प्रदाय बाबा शेख कहलाता है। उन्हें यजीदियों का धर्मगुरु माना जाता है। शेख जाति कई अन्य उप–जातियों में विभाजित है, जिनमें फकीर, क्युवैल, कोचक आदि शामिल हैं। इनकी एक जाति पीर कहलाती है, जोकि विभिन्न रोगों का इलाज करने में निपुण मानी जाती है। सबसे अधिक यजीदी मुरीद जाति से सम्बन्धित हैं। पीर और शेख यजीदियों की विभिन्न धार्मिक रस्मों–रिवाजों को करवाते हैं, जबकि फकीर इनके पुजारी हैं। फकीर आमतौर पर

काले कपड़े पहनते हैं और उनके सिर पर काली पगड़ी होती है। यह जाति भेड़ की खाल का बना छोटा कोट भी पहनती है। यजीदी भूमि, वायु, आग और पानी को पवित्र मानते हैं। इन्हें दूषित करना पाप माना जाता है। यजीदी बच्चों को पैदा होने के बाद पुजारी एक विशेष संस्कार द्वारा अपने धर्म में दीक्षित करते हैं। यजीदी बहु–पत्नी प्रथा में विश्वास नहीं करते। वह एक ही पत्नी पर सन्तोष करते हैं। ये धर्मान्तरण में भी विश्वास नहीं करते हैं। उनका मानना है कि यजीदी पैदा होते हैं बनाए नहीं जाते। उनकी यह आस्था हिन्दुओं से काफी मिलती–जुलती हैं। इनमें लाल रंग को शुभ माना जाता है जबकि सफेद रंग को शोक सूचक समझा जाता है। मुर्दों को पूर्व की ओर उनके सिर को रखकर दफनाया जाता है। किसी व्यक्ति के मरने से पूर्व उसके शव को नहलाया जाता है और शव के मुंह में पवित्र पानी की कुछ बूंदें डाली जाती हैं। जब शव को दफनाने के लिए ले जाया जाता है तो उसके आगे लोग नाचते–गाते चलते हैं। हिन्दुओं की भांति महिलाओं को कब्रिस्तान या श्मशान में जाने की अनुमति नहीं है। पंजाबी महिलाओं की तरह किसी व्यक्ति के मरने के बाद जो शोक गीत गाती हैं वह बैन कहलाते हैं। जबकि कुछ यजीदी अपने मुर्दों को जलाते भी हैं। यदि कोई यजीदी अपने धर्म के नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे समाज से निष्कासित कर दिया जाता है। यजीदियों का मानना है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी पाप के कारण समाज में बहिष्कृत किया जाता है तो उन्हें मुक्ति नहीं मिलती।

जर्मन संसद के यजीदी सदस्य फिल्ली कैनास कुक्का का कहना है कि यजीदियों का मूल स्थान भारत है। जो 5,000 साल पूर्व उन्हें कुछ कारणों से छोड़ना पड़ा और इसके बाद वह ईरान, ईराक, सीरिया और रूस के विभिन्न क्षेत्रों में बसने लगे। उनका यह भी कहना है कि 3,000 साल से उन पर विभिन्न शासकों द्वारा धर्मान्तरण के लिए अत्याचार किया जाता रहा है। यजीदियों के इतिहास के अनुसार 72 बार उन्हें सामूहिक नरसंहार का सामना करना पड़ा। धर्मान्तरण न करने के कारण विभिन्न विधर्मी शासकों ने उनके लाखों साथियों को मौत के घाट उतार दिया। इस सांसद के अनुसार सद्दाम हुसैन के शासनकाल में भी सद्दाम ने यजीदियें के धर्मान्तरण का अभियान चलाया था। इस अभियान के तहत इस्लाम धर्म स्वीकार न करने वाले 20 हजार यजीदियों को सद्दाम के शासनकाल में जहरीली गैस द्वारा मौत के घाट उतारा था और 50 हजार यजीदी इराक से अपनी जान बचाकर सीरिया चले गए थे। विश्व के समाचार पत्रों में कुर्दों के नरसंहार की तो खूब चर्चा हुई। मगर यजीदियों के नरसंहार के बारे में मीडिया ने जान–बूझकर उपेक्षा की। उनका आरोप है कि मुसलमान हो या ईसाई दोनों यजीदियों को पसन्द नहीं करते। इन दोनों सम्प्रदायों के शासकों का यह प्रयास रहा है कि यजीदी अपने प्राचीन धर्म को छोड़कर ईसाई या मुसलमान बन जाए।

जर्मनी में रहने वाले यजीदी मई, 2012 में वहां के समाचार–पत्रों में चर्चा का केन्द्र बने थे जबकि कटमोल्ड नामक नगर में एक भाई ने अपनी 18 वर्षीय बहन आरजू ओझमान की हत्या कर दी थी। क्योंकि वह जर्मन मूल के एक युवक के साथ प्रेम विवाह करना चाहती थी और वह अपने प्रेमी के साथ भाग गई थी। जर्मनी में रहने वाले यजीदी सम्प्रदाय का यह मानना था कि इस लड़की ने गैर–यजीदी प्रेमी के साथ भागकर यजीदी परम्पराओं और सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन किया है। इसलिए इस सम्प्रदाय के कुछ लोग इस जोड़े का पता लगाकर वहां पहुंचे, जहां वह गुप्त रूप से रह रहे थे। इन लोगों ने इस लड़की का जबरन अपहरण कर लिया और उसे उसके माता–पिता के घर पर ले आए जहां पर उसके भाई ने उसके सिर पर दो गोलियां मारकर उसकी निर्मम हत्या कर दी। एक अन्य घटना इराक की है जबकि 2007 में दुआ खलील अल शवाद नामक एक युवती को यजीदी सम्प्रदाय वालों ने पत्थर मार–मारकर जान से मार दिया था क्योंकि उसने अपना धर्मान्तरण करके इस्लाम धर्म को स्वीकार किया था और एक मुसलमान से शादी की थी।

यजीदी विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि मुसलमान हो या ईसाई दोनों शुरू से ही उनके खिलाफ रहे हैं। इन दोनों सम्प्रदायों के शासकों का हजारों सालों से यह प्रयास रहा है कि यजीदी अपने विशेष धर्म और आस्थाओं को छोड़कर ईसाई या इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लें। मगर हर तरह के उत्पीड़न और अत्याचारों का सामना करने के बावजूद यजीदी धर्मांतरण करने के लिए तैयार नहीं हुए। इसलिए उनका कत्लेआम किया गया। 500 वर्ष पूर्व मुस्लिम खलीफाओं ने दौलत उस्मानिया में रहने वाले 5 लाख यजीदियों को मुसलमान बनाने के लिए सेना की सहायता से एक विशेष अभियान चलाया था। इस अभियान के तहत तुर्की सेना ने 2 लाख यजीदियों का कत्लेआम कर दिया था। इस्लामी जिहादियों ने उन्हें गोमांस खाने के लिए विवश किया। जिस भी यजीदी ने गोमांस खाने से इंकार किया उसी का सिर कलम कर दिया गया। यजीदी औरतों और लड़कियों को खलीफा के सैनिक जबरन उठाकर ले गए और उनसे सामूहिक बलात्कार किया गया। खलीफा के अत्याचारों से बचने के लिए यजीदियों को अपनी जान बचाने के लिए सूफी धर्म में दीक्षित होने का नाटक करना पड़ा। यजीदियों ने यह घोषित किया कि उनका पवित्र स्थान इराक के नगर मोहसिल के समीप लालिस है। फ्रांसीसी लेखकों के अनुसार 500 वर्ष पूर्व मुस्लिम खलीफाओं के उत्पीड़न के बाद इराक में सिंजार घाटी में रहने वाले यजीदियों ने तो सूफी परम्पराओं को अपनाया। मगर इनकी एक बड़ी शाखा ने इन परम्पराओं को अपनाने से इनकार कर दिया और वे अपने धर्म को बचाने के लिए वहां से भागकर रूस में अरमानिया और जॉर्जिया प्रदेशों में चले गए। रूसी क्षेत्रों में रहने वाले यह यजीदी अपने पुराने धर्म का

आज भी पालन कर रहे हैं। इन्होंने इन क्षेत्रों में सूर्य उपासना के लिए कई मन्दिर स्थापित किए। इनमें से कई मन्दिर आज भी मौजूद हैं और उनमें उपासना का सिलसिला भी गुप्त रूप से जारी है। रूसी क्षेत्रों में रहने वाले इन सम्प्रदाय के लोगो ने अग्नि पूजा की भी पुरानी परम्पराओं को जीवित रखा। बाकू नामक स्थान पर इन अग्नि पूजकों के कई मन्दिर अभी भी मौजूद हैं। स्टालिन के शासनकाल में इस क्षेत्र के रहने वालों पर रूसी संस्कृति को किसी तरह से बलपूर्वक लादा गया था। उसके कारण अपनी जान बचाने के लिए इन यजीदियों ने अपने नाम रूसियों की तरह ही रखने शुरू कर दिए। कॉम्युनिस्टों के उत्पीड़ने से बचने के लिए उन्होंने सार्वजनिक रूप से सूर्य व अग्नि की उपासना करना बन्द कर दिया। मगर गुप्त रूप से उन्होंने अपनी परम्पराओं और उपासना पद्धति को जारी रखा। यजीदी नेताओं के अनुसार रूस में इस समय 4 लाख से अधिक पुराने यजीदी धर्म को मानने वाले लोग मौजूद हैं। यहां पर उनके शेख आदी इब्बन मुसाफिर की दरगाह है। यह दरगाह उनका पवित्र स्थान माना जाता है। यहां वे हर दो वर्ष बाद यात्रा करने आते हैं। जर्मन लेखकों के अनुसार यजीदियों का डीएनए अरबों से सर्वथा भिन्न है। इनकी शक्ल–सूरत भी अरबों की बजाय प्राचीन आर्य लोगों से मिलती हैं। उनका कहना है कि यजीदी आर्य नस्ल से सम्बन्धित हैं।

संदर्भ सूची

1. A. Ackermann "A Double Minority: Notes on the emerging Yezidi Diaspora" in W. Kokot and Kh. Tölölyan, eds., Religion, Identity and Diaspora. London, forthcoming.
2. P. Anastase Marie, "La de, couverte re,cente des deux livres sacre,s des Ye,zîdis,"Anthropos 6, 1911, pp. 1-39.
3. W. F. Ainsworth, Travels and Researches in Asia Minor, Mesopotamia and Armenia, London, 1841.
4. M. Bittner, Die Heiligen Bücher der Jeziden oder Teufelsanbeter (Kurdisch und Arabisch), Denkschriften der kaiserlichen Akademie der Wissenschaften in Wien, Phil.-Hist., Klasse, Band 55, Vienna, 1913.
5. O. and C. Celil, "Qewl û Beytê ÊEzdiya" in Zargotina K'urda/Kurdskij Folklor, Moscow 1978, pp. 5ff.
6. S. al-Damlûj^, al-Yaz^diyya, Mosul 1949. E.S. Drower, Peacock Angel, London, 1941.
7. R.Y. Ebied and M. J. L. Young, "An account of the history and rituals of the Yazidis of Mosul," Le Muse,on 85, 1972, pp. 481-522.
8. C.J. Edmonds, A Pilgrimage to Lalish, London, 1967.

9. R. H. W. Empson, The Cult of the Peacock Angel, London, 1928.

10. R. Frank, Scheich 'Adî, der grosse Heilige der Jezîdîs, Berlin, 1911.

11. N. Fuccaro, The Other Kurds: Yazidis in Colonial Iraq, London, 1999.

12. G. Furlani, Testi Religiosi dei Yezidi, Testi e Documenti per la Storia delle Religioni 3, Bologna, 1930.

13. J. S. Guest, The Yezidis: A Study in Survival, New York and London 1987, rev. ed.Survival Among the Kurds: A History of the Yezidis 1993.

14. M. Guidi, "Origine dei Yazidi e Storia Religiosa dell'Islam e del Dualismo," RSO 12, 1932, pp. 266-300.

15. P. G. Kreyenbroek, "Mithra and Ahreman, Binyâm^n and Malak Tâwûs: Traces of an Ancient Myth in the cosmogonies of Two Modern Sects," in Recurrent Patterns in Iranian Religion, ed. Ph. Gignoux, pp. 57-79, Stud.Ir., Cahier 11, Paris, 1992.

16. Idem, Yezidism-Its Background, Observances and Textual Tradition, Lampeter, Wales, 1995.

17. Idem, "On the study of some heterodox sects in Kurdistan," in Islam des Kurdes, Les Annales de l'Autre Islam no. 5, Paris, 1998, pp. 163-84.

18. Idem, with Kh. Jindy Rashow, God and Sheykh Adi are Perfect: Sacred Hymns and Religious Narratives of the Yezidis, in the series Iranica, ed. M. Macuch, Berlin, forthcoming.

19. A. H. Layard, Nineveh and its Remains, 2 vols, London, 1849.

20. R. Lescot, Enquête sur les Yezidis de Syrie et du Djebel Sindjar, Beirut, 1938.

21. J. Menant, Les Ye,zidiz : Épisodes de l'Histoire des Adorateurs du Diable, Paris, 1892.

22. A. Mingana, "Devil-worshippers; their beliefs and their sacred books," JRAS, 1916, pp. 505-26.

23. Idem, "Sacred books of the Yezidis," in ibid., 1921, pp. 117-19.

24. F. Nau and J. Tfinkdji, "Receuil de textes et de documents sur les Ye,zidis," Revue de l'Orient Chre,tien, 2nd series, vol. 20, 1915-17, pp. 142-200, 225-75.

25. N. Siouffi, "Notice sur la secte des Ye,zidis," JA, ser. 7, vol. 19, 1882 pp. 252-68.

26. Idem, "Notice sur le Che,ikh 'Adi et la Secte des Ye, zidis," JA, ser. 8, vol. 5,1885, pp. 78-100.

27. Kh. Silêman, and Kh. Jindy, Êezadiyatî liber Ronaya Hindek Têkstêd Aînê ÊEzdiyan, Baghdad, 1979, repr. 1995 in Latin script, n.p.

7 नई खिलाफत और अरब जगत

नई इस्लामी खिलाफत के उदय का अरब जगत और विशेष रूप से पश्चिमी एशिया पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इस पर भी विचार करना बेहद जरूरी है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि तेल के भण्डारों के कारण ब्रिटेन और इसके बाद अमेरिका की अरब जगत एवं पश्चिमी एशिया में खास रुचि रही है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन ने सउदी अरब का शासन शाह साउद के परिवार को सौंपा था और जॉर्डन एवं यमन में भी अपने वफादार हाशमी वंश को इन दोनों देशों का शासक बनाया था। अब यही खेल अमेरिका भी खेल रहा है। यह तथ्य सर्वविदित है कि 1930 के बाद जब ब्रिटेन ने ईराक से अपना बोरिया–बिस्तर बांधना शुरू किया तो अमेरिका ने इस क्षेत्र में अपने पैर फैलाने शुरू किए थे। ईराक के शासक अब्दुल करीब कासिम की रूस के साथ गहरी सहानुभूति थी। इसलिए अमेरिका ने उसकी हत्या करवाकर उसकी जगह पर अपने एक समर्थक अब्दुल सलीम आरिफ को गद्दी पर बिठा दिया। मगर कुछ ही वर्षों बाद रूस के इशारे पर बाथ पार्टी ने अब्दुल सलीम आरिफ को सत्ता से हटा दिया। यही खेल अमेरिका ने ईरान में भी खेला था। उसने रूस–समर्थक प्रधानमंत्री मोसादिक को अपदस्थ करके ईरान के सम्राट रजा शाह पहलवी का समर्थन करना शुरू किया। अमेरिका ने ईरान को गुप्त रूप से सैनिक सहायता देनी शुरू की। इराक में जब सद्दाम हुसैन ने सत्ता सम्भाली तो उसने ईरान के साथ डिप्लोमैटिक सम्बन्ध स्थापित किए। ईरान में जिस तरह से रूसी प्रभाव बढ़ रहा था, उसको देखते हुए अमेरिका ने इराक के साथ दोस्ती गांठनी शुरू की।

1990 में ईराक ने कुवैत पर हमला किया। इसके बाद अमेरिका कुवैत की सहायता के लिए मैदान में कूद पड़ा। 1992 से 1995 के बीच अमेरिका ने इस बात का पूरा–पूरा प्रयास किया कि सद्दाम हुसैन की हत्या करवाकर वहां पर किसी अपनी कठपुतली को गद्दी पर बिठाया जाए। अमेरिका द्वारा ईराक के शियाओं को सुन्नी शासक सद्दाम के खिलाफ भड़काया गया। सद्दाम को कमजोर करने के लिए अमेरिका ने कुर्दों को भी हर

तरह की सहायता देनी शुरू की। 2003 में अमेरिका ने ईराक पर कब्जा कर लिया और सद्दाम हुसैन को फांसी पर लटका दिया गया।

इराक पर अमेरिकी हमले के लिए तत्कालीन राष्ट्रपति जॉर्ज बुश और उनकी रिपब्लिकन पार्टी को दोषी ठहराया जाता है। इसमें शक नहीं कि अमेरिका ईराक की विपुल तेल सम्पदा पर कब्जा करना चाहता था। अमेरिका ने अपनी एक कठपुतली को इराक के प्रधानमन्त्री पद पर बिठाया था। इराक की सुन्नी आबादी का आरोप था कि अमेरिका और ईरान मिलकर ईराक के शियाओं को प्रोत्साहन दे रहे हैं। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में ईराक में अनेक उग्रवादी संगठन उभरे। इनमें अलकायदा प्रमुख था। बाद में अलकायदा के ही एक पुराने नेता अल बगदादी ने नई इस्लामी खिलाफत का ऐलान कर दिया। राष्ट्रपति बराक ओबामा के सत्ता में आने के बाद अमेरिका ने ईराक से अपनी सेनाओं को हटाना शुरू किया। मगर ओबामा का यह प्रयास था कि ईराक की सुरक्षा परोक्ष रूप से अमेरिका के हाथ में रहे। इराक के सुन्नियों को सन्तुष्ट करने के लिए अमेरिका को नूरी अल मुल्की की शिया सरकार को हटाना पड़ा। अलकायदा ने अल जरकावी के नेतृत्व में शियाओं के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया था, जिसमें काफी शिया मारे गए।

सैनिक विशेषज्ञों का कहना है कि नई इस्लामी खिलाफत के सैनिकों के पास अमेरिकी अस्त्र–शस्त्र हैं। कुछ लोगों का कहना है कि ये अस्त्र–शस्त्र नई खिलाफत के जिहादियों ने ईराकी सैनिकों और पुलिस से छीने थे। जबकि कुछ अन्य लोगों का दावा है कि अमेरिका ईराक से हटते समय वहां पर अस्त्रों–शस्त्रों के जो विशाल भण्डार छोड़ गया था। उन पर बगदादी की नई खिलाफत ने कब्जा कर लिया है। सीरिया में भी स्थिति इराक से भिन्न नहीं है। अमेरिका बशर अल असद की सीरियाई सरकार के खिलाफ है और उसके सशस्त्र विरोधियों को परोक्ष रूप से सहायता दे रहा है। जबकि नई खिलाफत के सैनिक सीरिया में छिड़े गृहयुद्ध का लाभ उठाकर वहां के क्षेत्रों पर अपना कब्जा कर रहे हैं। 2012 में राष्ट्रपति चुनाव में हिलेरी क्लिण्टन का दावा था कि ओबामा प्रशासन की कमजोरी के कारण नई इस्लामी खिलाफत दिनों–दिन मजबूत हो रही है। नई खिलाफत विश्वभर के मुसलमानों में जिहादी भावनाओं को भडकाकर उन्हें जिहाद में शामिल होने के लिए उकसा रही है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अमेरिकी और यूरोपीय मूल के मुसलमान इस नई खिलाफत को भारी मात्रा में सहायता दे रहे हैं। यह सहायता बोगस एनजीओ द्वारा युद्ध पीड़ितों की सहायता की आड़ में दी जा रही है। खास बात यह है कि पश्चिमी देश नई खिलाफत से पेट्रोल और गैस ब्लैक मॉर्केट में खरीदकर उसकी आतंकवादी गतिविधियों को शह दे रहे हैं। यूरोप के समाचार–पत्रों के अनुसार नई खिलाफत अपने तेल के भण्डारों को तुर्की,

कुर्दिस्तान और ईरान के रास्ते यूरोपीय देशों को बेच रहे हैं। नई खिलाफत हर रोज 80 हजार बैरल तेल इन यूरोपीय देशों को सप्लाई करके 32 लाख डॉलर हर रोज कमा रही है। इससे जो धनराशि नई खिलाफत को प्राप्त हो रही है, उसे वह अपनी सेना और सैनिक सामग्री पर खर्च कर रहा है।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि कुछ अमेरिकी कम्पनियां भी गुप्त रूप से नई खिलाफत से पेट्रोल खरीद रही हैं। हाल में ही इराक के तेल मंत्रालय द्वारा अमेरिका की एक अदालत में एक याचिका दायर करके इस बात की मांग की गई है कि अदालत नई इस्लामी खिलाफत द्वारा अवैध रूप से अमेरिका भेजे गए दस लाख बैरल पेट्रोल को अमेरिका में आने की अनुमति न दे। ब्रिटिश आयल कम्पनी ने इस बात की घोषणा की है कि वह उत्तरी ईराक स्थित रोमैला तेल भण्डारों से तेल का उत्पादन दुगुना कर रहा है। बगदादी ने नई इस्लामी खिलाफत की घोषणा काफी सोच–समझकर की है। एक ओर तो वह विश्व के मुसलमानों का समर्थन जिहाद के नाम पर प्राप्त करना चाहता है। दूसरी ओर वह शिया–सुन्नी में विभाजन करके अरब जगत के सुन्नी देशों का समर्थन प्राप्त करना चाहता है। अरब जगत में मुख्य रूप से ईरान और ईराक ही ऐसे देश है, जहां पर शिया भारी संख्या में आबाद हैं। ईरान ने इस्लामिक क्रान्तिकारी गॉर्ड नामक सैनिकों को इराक में उतार दिया है और वो नई खिलाफत के सैनिकों से जंग कर रहे हैं।

शियाओं और सुन्नियों के बीच संघर्ष की लम्बी कहानी है, जिसकी शुरुआत 7वीं शताब्दी में हजरत मोहम्मद की मौत के बाद शुरू हुई थी। पैगम्बर के दामाद हजरत अली पैगम्बर के उत्तराधिकारी बनना चाहते थे मगर पैगम्बर के ससुर अबू बकर ने खिलाफत पर कब्जा कर लिया। पैगम्बर की पत्नी आयशा ने अपने पिता को खलीफा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यहां तक कि जब अली ने खिलाफत के पद पर कब्जा कर लिया तो आयशा ने उसके खिलाफ बकायदा युद्ध छेड़ दिया था। यह अलग बात है कि इस युद्ध में उसे करारी हार का सामना करना पड़ा था। यही कारण है कि शिया अल बगदादी की नई इस्लामी खिलाफत को मान्यता देने के लिए तैयार नहीं है। उनका साथ अरब देशों में रहने वाले ईसाई भी दे रहे हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि विश्व के सुन्नियों ने इस नई खिलाफत का विरोध नहीं किया। ईराक में जो गृहयुद्ध चल रहा है वह शिया–सुन्नी का ही एक रूप है। हालांकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सउदी अरब, जॉर्डन, यमन, बहरीन, यूएई आदि अमेरिकी समर्थक देश इस नई इस्लमी खिलाफत का विरोध कर रहे हैं। मगर कोई इस बात से भी इनकार नहीं कर सकता कि यूरोप के साथ–साथ इन इस्लामी देशों की सुन्नी जनता भी खुलेआम अब इस नई खिलाफत का समर्थन करने के लिए मुखर हो गई है। शायद

इसी कारण से सउदी और अन्य अरब देशों ने आतंकवाद विरोधी अभियान के नाम पर नई खिलाफत का विरोध करना शुरू किया है। समाचार पत्रों के अनुसार सउदी अरब और अन्य अमेरिकी सरकारों ने पांच से सात हजार के बीच नई खिलाफत के समर्थकों को जेलों में बन्द कर दिया है। सरकार विरोधी प्रदर्शनों पर इन देशों पर रोक लगा दी गई है। इन इस्लामी देशों में प्रचार माध्यमों पर भी नियन्त्रण किया जा रहा है ताकि नई खिलाफत का समर्थन जोर न पकड़ पाए।

नई खिलाफत की आर्थिक रूप से कमर तोड़ने के लिए अमेरिका ने तेल की कीमतों को एक निश्चित नीति के तहत विश्व बाजार में गिराना शुरू किया है। इस समय विश्व बाजार में तेल की कीमत 42 डॉलर बैरल तक गिर चुकी है जोकि एक रिकॉर्ड है। यह रेट पिछले एक दशक का न्यूनतम है। सवाल यह पैदा होता है कि क्या अमेरिका और सहयोगी देश नई खिलाफत की बढ़ती हुई लोकप्रियता को रोक पाने में सफल होंगे? अमेरिका और यूरोपीय देशों के मुसलमानों में नई खिलाफत के प्रति जो रुचि तेजी से बढ़ रही है उसे नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। जैसे–जैसे नई खिलाफत सुदृढ़ होगी अरब जगत के देशों में उसका प्रभाव पड़ेगा। यही कारण है कि इस नई खिलाफत का उदय अमेरिका को अपने के लिए खतरा नजर आता है। इसलिए वह सैनिक अभियान के साथ–साथ नई खिलाफत के खिलाफ आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर भी उसके प्रसार को रोकने का प्रयास कर रहा है। अमेरिका यह भी प्रयास कर रहा है कि अफगानिस्तान से अमेरिकी सैनिकों की वापसी के बाद इस्लामी जगत में जो परिस्थितियां बनती हैं, उसका लाभ नई इस्लामी खिलाफत न उठा पाए। इसके साथ ही अमेरिका का यह भी प्रयास है कि अलकायदा या अल नूसरा जैसे इस्लामी आतंकवादी संगठनों को नई खिलाफत के खिलाफ मैदान में उतारा जाए। नई खिलाफत ने गत दो वर्षों में जिस तेजी से इस्लामिक जगत में अपना प्रभाव बढ़ाया है, उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती।

नई खिलाफत इस बात का प्रचार कर रही है कि इस्लाम के नए स्वर्णयुग की शुरुआत हो चुकी है। नई खिलाफत का लक्ष्य ईसाईयों और अन्य गैर–मुसलमानों को धूल में मिलाकर इस्लामी वर्चस्व को हर क्षेत्र में स्थापित करना है। नई खिलाफत ने अफ्रीका के अनेक इस्लामी बाहुल क्षेत्रों में जिस तरह से अपने पैर पसारने शुरू किए हैं, उससे अमेरिका और पश्चिमी देशों की परेशानियों में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है। सउदी अरब के शासक अब्दुल्ला के निधन के बाद अमेरिका ने सउदी अरब में अपने प्रभाव में वृद्धि करने के लिए अपनी अरब नीति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना शुरू किया है। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि अमेरिका नई खिलाफत के प्रभाव को बढ़ने से रोक पाने में किस हद तक सफल होता है?

संदर्भ सूची

1. Rise of ISIS, Jay Sekulow.
2. Can A War With ISIS Be Won?, Michael Glint.
3. ISIS Taking over the Middle East, Joseph Spark.
4. Rise and Fall of Khilafat, Dr. Munir.

8 भारत में अलकायदा के बढ़ते कदम

अलकायदा के प्रमुख अयामन अल जवाहिरी ने एक वीडियो टेप जारी करते हुए यह घोषणा की है कि भारतीय उप–महाद्वीप में इस्लामी जिहाद को तेज करने के लिए एक नया संगठन कियादत अल जहाद स्थापित करने का फैसला किया है, जिसका प्रमुख शेख आसीम उमर को नियुक्त किया गया है। अल कायदा प्रमुख ने यह भी घोषणा की कि अलकायदा बोस्निया, चेन्चेन्या, कश्मीर, असम और म्यांमार को काफिरों के चुंगल से मुक्त करवाने के लिए सशस्त्र जंग–ए–आजादी को तेज करेगा। अल जवाहिरी की इस घोषणा के बाद भारत में इस्लामी उग्रवादी जिहाद का खतरा बढ़ गया है। यह संगठन जिहादी झण्डा बुलन्द करके भारत में मुसलमानों को काफिरों की गुलामी से मुक्त करवायेगा। इस नए संगठन का पूरा नाम जमायत कियादत–अल–जिहादी फी सिब्बी अल कियादत अल हिन्दिया रखा गया है। इसका प्रवक्ता ओसामा मोहम्मद को नियुक्त किया गया है।

अलकायदा प्रमुख ने यह भी दावा किया है कि गत दो वर्षों से भारत में युद्ध करने वाले जिहादियों को एक मंच पर लाने का प्रयास चल रहा था। इस संगठन का अमीर मुल्ला मोहम्मद उमर मोजाहिद को नियुक्त किया गया है। दो वर्ष पूर्व अमेरिकी गुप्तचर एजेन्सी सी.आई.ए. ने भारत सरकार को यह सूचित किया था कि जम्मू–कश्मीर में तालिबान ने अपना ठिकाना बना रखा है, जिसमें नौजवानों को जिहाद में हिस्सा लेने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। कहा जाता है कि अमेरिकी सरकार के अनुरोध पर भारत के एक गुप्तचर रक्षा संगठन एस.एस.एफ. ने कश्मीर घाटी में ओसामा बिन लादेन का सुराग लगाने का प्रयास किया था। मगर ओसामा उसके हाथ नहीं लगा था। बाद में ओसामा बिन लादेन को पाकिस्तान स्थित एबटाबाद छावनी के समीप अमेरिकी कमाण्डो कार्रवाई में मार गिराया था। ओसामा के मरने के बाद इस संगठन की जिम्मेवारी यमन के रहने वाले अल जवाहरी ने सम्भाली है। कियादत–अल तालिबान का प्रमुख आसीम उमर नामक जिस व्यक्ति को बनाया गया है, उसके बारे में गुप्तचर एजेन्सियों को कोई जानकारी नहीं है। फिर भी भारत सरकार राष्ट्रीय सुरक्षा

एजेन्सी के सहयोग से इस उग्रवादी संगठन से सम्बन्धित समाचारों को एकत्रित कर रही है। पिछले वर्ष अलकायदा से सम्बन्धित एक कुख्यात आतंकवादी मोहम्मद अहमद जरार सिदप्पा उर्फ यासिन भटकल को गिरफ्तार किया गया था। कहा जाता है कि उसके हाथ पांच सौ के लगभग बेगुनाहों के खून से रंगे हुए हैं। अलकायदा ने एक अपील भारतीय मुसलमानों के नाम जारी की है कि वे जिस देश के एक हजार साल तक शासक रहे हैं और अब वह उसमें गुलाम बनकर जिन्दगी गुजार रहे हैं, इसीलिए उन्हें वहां पर अपनी पुनः आजाद हुकूमत कायम करने के लिए सशस्त्र जिहाद करना चाहिए। विश्वभर के सभी मुसलमान उनकी हर तरह से सहायता करेंगे।

अलकायदा नामक इस्लामी आतंकवादी जिहादी संगठन की स्थापना 1988 में ओसामा बिन लादेन ने की थी। कहा जाता है कि इस संगठन की स्थापना में अमेरिका की गुप्तचर एजेन्सी सी.आई.ए ने विशेष योगदान दिया था। इस संगठन की स्थापना अमेरिका ने अफगानिस्तान में रूसियों के बढ़ते हुए कदमों को रोकने के लिए की थी। इसका लक्ष्य विश्वभर में इस्लामिक साम्राज्य स्थापित करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अन्य इस्लामी जिहादी संगठनों से सहयोग प्राप्त करना है। फरवरी 1998 में अलकायदा ने एक बयान जारी किया जिसका शीर्षक था – 'यहूदियों और अन्य काफिरों के खिलाफ विश्वभर में इस्लामी जिहाद।' इस बयान में विश्वभर के मुसलमानों को यह निर्देश दिया गया था कि यह सभी मुसलमानों का धार्मिक कर्तव्य है कि वे अमेरिकियों को जहां भी पाएं तुरन्त उनका सफाया कर दें। जैसे–जैसे अलकायदा की लोकप्रियता बढ़ी उसने अमेरिका से अपनी दूरी बढ़ानी शुरू कर दी। 2001 में मिस्र के जिहादी संगठन इस्लामिक जिहाद का अलकायदा में विलय हुआ। इस संगठन का प्रमुख अयमान अल जवाहिरी था। ओसामा बिन लादेन की अमेरिकन कमाण्डो सैनिकों द्वारा एबटाबाद में हत्या किए जाने के बाद अब अलकायदा की कमान इसी अल जवाहिरी के हाथ में है। 11 सितम्बर, 2001 को अलकायदा ने अमेरिका पर धावा बोला और न्यूयॉर्क स्थित वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर को अलकायदा के आत्मघाती विमान चालकों ने अपने विमान उन मीनारों से टकराकर उन्हें ध्वस्त कर दिया था। इस हमले में सैंकड़ों अमेरिकी मारे गए थे। इस घटना के बाद अलकायदा ने अमेरिका के खिलाफ जिहाद छेड़ दिया। जवाब में अमेरिका ने अफगानिस्तान में अलकायदा के ठिकानों को तबाह करने और तालिबान का नामो–निशान मिटाने का अभियान तेज कर दिया।

अलकायदा के नए प्रमुख अल जवाहिरी के अनुसार अलकायदा के तीन प्रमुख लक्ष्य हैं। इनमें से पहला यह है कि दुनिया में अल्लाह की इस्लामी हुकूमत स्थापित की

जाए। अल्लाह की राह में शहीदी दी जाए और इस्लाम को स्वार्थी तत्वों से साफ किया जाए। अलकायदा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी हिंसक तरीके जैसे हत्या करना, बमों से हमला करना, अपहरण करना और बन्धक बनाना एवं आत्मघाती आक्रमणकारियों का इस्तेमाल कर रहा है। अलकायदा द्वारा अमेरिका के साथ–साथ उसके सहयोगी देशों को भी निशाना बनाया जा रहा है। अलकायदा का मकड़जाल सारे यूरोप, यमन, पाकिस्तान, लेबनॉन, अफगानिस्तान, उत्तरी अफ्रीका, मध्य एशिया एवं भारत में फैला हुआ है। मिस्र, सउदी अरब, कतर, यूएई, जॉर्डन, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, मलेशिया आदि अनेक इस्लामी देशों में अलकायदा और उसके सहयोगी संगठनों पर पाबन्दी लगाई जा चुकी है। मगर इस पाबन्दी का इसलिए कोई प्रभाव नहीं हो रहा है क्योंकि इन सभी देशों में अलकायदा के समर्थक भारी संख्या में मौजूद हैं।

अलकायदा के विश्वभर में फैले हुए विभिन्न कुख्यात इस्लामी जिहादी संगठनों से गहरे रिश्ते हैं। ऐसे संगठनों में (1) आर्म इस्लामिक ग्रुप, (2) सालाफिस्ट जिहाद एवं जंग सशस्त्र इस्लामिक गुट, (3) मिस्री इस्लामिक जिहाद, (4) अल–जामा अल इस्लामिया, (5) जमाते इस्लामिया, (6) लिबिया का इस्लामी जिहादी ग्रुप, (7) बैत अल इमाम (जॉर्डन), (8) लश्करे तोयबा कश्मीर, (9) जैश–ए–मोहम्मद कश्मीर, (10) असबात अल इंशार, (11) हिजबुल्लाह (लेबनॉन), (12) अल बदर, (13) हरकत–उल–अंसार, (14) हरकत–उल–मुजाहिदीन, (15) अहले हदीस (भारत और पाकिस्तान), (16) हरकत–उल–जिहाद (भारत, कश्मीर और बांग्लादेश), (17) जमियते–उलेमा–ए इस्लाम, (18) जमियत–उल–उलेमा–ए–पाकिस्तान, (19) मोरो लिब्रेशन इस्लामिक फ्रण्ट (फिलीपीन्स), (20) अब्बू सियाफ (मलेशिया), (21) अल इतिहाद अल इस्लामिया, (22) इस्लामिक मूवमेण्ट ऑफ उज्बेकिस्तान, (23) इस्लामिक मूवमेंट ऑफ फ्रीडम (चीन), (24) इस्लामिक आर्मी ऑफ यदन (यमन), (25) अल सबाब (लिबिया) प्रमुख हैं।

ये सभी आतंकवादी इस्लामी संगठन सुन्नियों के हैं। अलकायदा का इरादा अब ईरान, पाकिस्तान, भारत (कश्मीर, असम और मणिपुर, गुजरात और उत्तर प्रदेश), बांग्लादेश और म्यांमार में अपनी हिंसक गतिविधियों का विस्तार करना है।

पाकिस्तान में तालिबान पहले से ही काफी सक्रिय है। इस जिहादी संगठन को कभी अमेरिकी गुप्तचर एजेंसी सी.आई.ए. का समर्थन प्राप्त था। तालिबान का गठन अफगानिस्तान में रूसियों के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए अमेरिका के गुप्तचर विभाग ने पाकिस्तान सेना के सहयोग से किया था। जब रूसी सेना अफगानिस्तान से चली गई तो वहां के शासन पर तालिबान ने कब्जा कर लिया था।

गुप्तचर सूत्रों के अनुसार इस समय विभिन्न इस्लामी देशों के दस हजार जंगजू अफगानिस्तान में डेरा डाले हुए हैं। वह अमेरिका के साथ–साथ अन्य पश्चिमी देशों के सैनिकों को भी अपना निशाना बना रहे हैं। कम से कम चार बार वह भारतीय दूतावास को भी बमों से उड़ाने का प्रयास कर चुके हैं। अमेरिका के दबाव पर पाकिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ को तालिबान के खिलाफ कार्रवाई करनी पड़ी थी। पाकिस्तानी सेना ने 2007 में इस्लामाबाद स्थित लाल मस्जिद को घेर लिया था और इस हमले में 200 से अधिक तालिबान लड़ाकू मारे गए थे।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि पाकिस्तान की सेना का एक बड़ा वर्ग जिहादी तालिबान से सहानुभूति रखता है। वजीरिस्तान में अमेरिका तालिबान के खिलाफ युद्ध में उलझा हुआ है। ताजा समाचारों के मुताबिक अमेरिका द्वारा प्रशिक्षित पाकिस्तानी जिहादी भारी संख्या में पाक अधिकृत कश्मीर का रूख कर रहे हैं। युद्ध विराम रेखा के समीप 38 गुप्त शिविरों में इन तालिबानी जिहादियों ने डेरे डाले हुए हैं। उनकी योजना जम्मू–कश्मीर के भारतीय क्षेत्र में घुसकर वहां उत्पात मचाने की है। पाकिस्तान भी इस नापाक योजना का भागीदार है।

हाल में ही भारत में अपनी हिंसक गतिविधियों का प्रसार करने के लक्ष्य से अलकायदा ने अपनी नई रणनीति बनाई है, जिसके तहत देश के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में स्थानीय युवकों को जिहाद के लिए भर्ती किया जाएगा। इन्हें छापामार युद्ध और बम आदि बनाने का प्रशिक्षण कुछ चुने हुए इस्लामी मदरसों में अलकायदा के चुनिन्दा लोग देंगे। खास बात यह है कि अलकायदा इस बार उच्च शिक्षा प्राप्त मुसलमान युवकों में सेंध लगाने का विशेष रूप से प्रयास कर रहा है। जिहाद के लिए उन्हें भारत में तब्लीगी जमात, जमाते अहले हदीस, सिमी, उम्मा, पॉपुलर फ्रण्ट, जिहादी काउंसिल जैसे संगठनों से भी परोक्ष रूप से काफी सहायता मिल रही है। हाल में ही पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शामली, बागपत और मुजफ्फरनगर के क्षेत्रों में पुलिस के हाथ कुछ ऐसे वीडियो टेप लगे हैं, जिनमें मुस्लिम युवकों को दंगों का बदला लेने के लिए जिहाद में भर्ती होने के लिए उकसाया गया है। इसके अतिरिक्त बिहार के मिथिलांचल और हरियाणा के मेवात क्षेत्र, तेलंगाना, केरल और तमिलनाडु के कुछ क्षेत्रों में भी अलकायदा के समर्थकों की गतिविधियों में तेजी आने के सम्बन्ध में गुप्तचर सूत्रों ने संकेत दिए हैं।

हाल में ही पश्चिम बंगाल के बर्धमान जिले खैरागढ़ में हुए एक बम धमाके में बम बनाते हुए एक व्यक्ति की मौत हो गई थी। कहा जाता है कि मरने वाला बांग्लादेश का एक उग्रवादी था। पुलिस को इस जगह से अलकायदा के प्रमुख का एक वीडियो टेप भी

मिला, जिसमें भारतीय को जिहाद में भाग लेने के लिए उकसाया गया था। इस जगह से बम बनाने के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेज बरामद हुए और एक खराद की मशीन भी मिली, जिसमें रॉकेट लांचर बनाये जा रहे थे। जिस मकान में यह धमाका हुआ, वह एक छोटा सा मकान है। यह बम बनाते हुए जो दो लोग मारे गए थे, उनमें शकील अहमद और स्वप्न मण्डल शामिल हैं। अब्दुल हकीम नामक व्यक्ति इस घटना में घायल हो गया था। पुलिस का दावा है कि शकील अहमद बांग्लादेश का रहने वाला था, उसका सम्बन्ध बांग्लादेश के एक आतंकवादी संगठन से था। यह भी दावा किया गया कि अलकायदा असम, पश्चिम बंगाल और मणिपुर में अपने अड्डे स्थापित कर चुकी है और इन राज्यों में भोले–भाले युवकों एवं युवतियों को बरगलाकर हिंसक गतिविधियों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अलकायदा उत्तर–पूर्वी भारत में हिंसा की आग को भड़काना चाहती है। इस बात को कौन नहीं जानता कि पूर्वी उत्तर भारत में सक्रिय आतंकवादी इस्लामी संगठनों के शुरू से ही नागा और उल्फा विद्रोहियों के साथ गहरे रिश्ते रहे हैं। इस्लामी सम्पर्कों के सहारे कभी उल्फा और नागा विरोधी बांग्लादेश में अपने अड्डे बनाए हुए थे और उन्होंने पाकिस्तान के जिहादी संगठनों से अपने सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। 2004 में बांग्लादेश गुप्तचर विभाग ने चटगांव की बंदरगाह में खड़े हुए एक थाइलैंड के जहाज पर छापा मारा था। इस जहाज से 11 सौ एके 47 राइफलें, रॉकेट लांचर, 200 पिस्तौलें और भारी मात्रा में गोला–बारूद बरामद किया था। कहा जाता है कि यह अस्त्र–शस्त्र भारत में विद्रोह की आग भड़काने वाले आतंकी संगठनों को सप्लाई किए जाने वाले थे।

इस वर्ष बांग्लादेश की एक अदालत ने इस मुकदमे में दो दर्जन लोगों को उम्रकैद की सजा भी मिली है। सजा पाने वालों में बांग्लादेश बॉर्डर संगठन के चार उत्तराधिकारी भी शामिल हैं। कहा जाता है कि ये अस्त्र–शस्त्र आई.एस.आई. के सहयोग से चीनी सूत्रों से भिजवाये गए थे। बम बनाने का प्रयास करते हुए दो जिहादी मारे गए थे। पश्चिम बंगाल सरकार ने राजनैतिक दबाव के कारण इस घटना को दबाने का प्रयास किया था। स्थानीय पुलिस ने समाचार–पत्रों में एक समाचार प्रकाशित करवाकर यह दावा किया था कि यह बम धमाका नहीं बल्कि रसोई गैस के सिलिण्डर में आग लग जाने के कारण यह धमाका हुआ था। मगर जागरूक मीडिया से सच्चाई छुप न सकी। जब समाचार पत्रों और टीवी चैनलों में इसकी गरमागरम चर्चा हुई तो केन्द्र सरकार ने इस घटना की जांच का कार्य राष्ट्रीय जांच एजेन्सी को सौंप दिया। पश्चिम बंगाल की मुख्यमन्त्री ममता बनर्जी का अल्पसंख्यक प्रेम किसी से छिपा हुआ नहीं है। राज्य सरकार की शह पर पश्चिम बंगाल में इस्लामी उग्रवादी अपने पैर पसार चुके हैं। इनका गहरा सम्बन्ध बांग्लादेश में सक्रिय पाकिस्तानी समर्थक तत्वों और जिहादी

संगठनों से है। राष्ट्रीय जांच एजेन्सी की जांच के बाद यह रहस्योद्घाटन हुआ है कि पश्चिम बंगाल में गांव–गांव में फैले इस्लामी मदरसे उग्रवादियों को तैयार करने की फैक्ट्रियां बनी हुई हैं। राष्ट्रीय जांच एजेंसी के सूत्रों के अनुसार राज्यों के विभिन्न अंचलों में 54 मदरसे ऐसे पाए गए हैं, जिनमें जिहादियों को बम बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जांच एजेन्सी ने इस सन्दर्भ में आठ लोगों को हिरासत में लिया है, जिनमें चार महिलाएं भी शामिल हैं, जबकि शेष आतंकवादी फरार हो गए हैं। केन्द्रीय जांच एजेन्सियों ने इन मदरसों पर छापे मारकर वहां से 45 बम और बम बनाने की काफी सामग्री बरामद की है। कहा जाता है कि इन बमों में जो सामग्री इस्तेमाल की गई, वह स्थानीय तौर पर उपलब्ध नहीं है। इसका इस्तेमाल सेना में ही किया जाता है। जांच एजेन्सियों का यह विश्वास है कि यह विस्फोटक सामग्री बांग्लादेश से तस्करी करके भारत लाई गई हैं। बांग्लादेश में इस विस्फोटक सामग्री को पाकिस्तानी गुप्तचर एजेन्सी आई.एस.आई. ने उपलब्ध कराया होगा।

विश्लेषकों का अनुमान है कि तालिबान को इसीलिए यह नया संगठन स्थापित करना पड़ा है क्योंकि ईराक में एक अन्य आतंकवादी संगठन दौलत इस्लामिया ईराक और सीरिया स्थापित किया जा चुका है। इस संगठन का पश्चिमी देशों में हाल में ही तेजी से प्रसार हुआ है। कहा जाता है कि कनाडा, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडन, डेनमॉर्क और अमेरिका में रहने वाले मुस्लिम युवक व युवतियां इस संगठन के द्वारा छेड़े गए जिहाद में हिस्सा ले रहे हैं। इस्लामी जगत में इस नए संगठन के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए अलकायदा को अब भारत व पाकिस्तान में एक नया जिहादी संगठन बनाना पड़ा है। इस नए संगठन का नियंत्रण अफगानिस्तान में बैठे हुए कुख्यात आतंकवादी मुल्ला उमर के हाथ में है। पाकिस्तानी पत्रकार हामिद मीर ने यह दावा किया है कि अलकायदा ने जो नया संगठन स्थापित किया है, उसका प्रमुख आसीम उमर भारतीय है और वो देवबन्द स्थित इस्लामी शिक्षा संस्थान दार–उल–उलूम देवबन्द में शिक्षा प्राप्त कर चुका है। मीर ने यह भी दावा किया कि वह इस व्यक्ति से दो बार अफगानिस्तान में गजनी में मिल चुका है। उसने यह भी दावा किया कि जब वह भारत पर 17 बार हमला करने वाले महमूद गजनवी की मजार को देखने के लिए वहां गया था तो उससे आसीम उमर के एक दूत ने सम्पर्क स्थापित करके उसे यह अवगत कराया था कि आमिर साहब आपसे मिलना चाहते हैं। तालिबान आपको कोई कष्ट नहीं पहुंचायेंगे। आसीम उमर ने उससे यह पेशकश की थी कि जब उसके लड़ाकू अफगानिस्तान में अमेरिका के दूतावास पर हमला करें तो इस हमले की कवरेज वह अपने टीवी चैनल द्वारा करवाकर उसे विश्वभर में पेश करे। मगर मैंने उसके इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया था। उसने यह भी दावा किया कि आसीम उमर ने

उससे उर्दू में धाराप्रवाह बातचीत की थी। आसीम उमर ने उसे उर्दू में लिखी हुई तालिबान से सम्बन्धित कुछ पुस्तकें भी भेंट की थी। इन पुस्तकों पर आसीम उमर ने अपनी कलम से लिखा था 'हदिया खालूस हामिद साहेब' (अरज आसीम उमर) हामिद मीर की सेवा में सद्भावना सहित भेंट आसीम उमर की ओर से। इसी भेंट के दौरान आसीम उमर ने उसे बताया था कि वह मूलरूप से भारत का रहने वाला है और उसने इस्लामी शिक्षा दार–उल–उलूम से प्राप्त की है।

हामिद मीर के अनुसार 2007 में वह फिर उत्तरी वजीरिस्तान में मिला था। आसीम उमर ने उसे बताया था कि तालिबान के कुछ अन्य लीडरों के साथ मतभेद हो जाने के कारण उसे अपना पुराना अड्डा छोड़ना पड़ा है। स्थानीय तालिबान नेताओं का आरोप था कि आसीम उमर भारत का जासूस है। इसके बाद आसीम उमर भागकर पाकिस्तान चला गया था। आसीम उमर द्वारा लिखी हुई कई दर्जन पुस्तकें अंग्रेजी और उर्दू में पाकिस्तान भर में उपलब्ध है। इन पुस्तकों में जिहाद के महत्व और उसके विभिन्न पृष्ठों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। इन पुस्तकों में मुसलमान नौजवानों से अनुरोध किया गया है कि वह इस्लामी गौरव को बरकरार रखने के लिए जिहाद में हिस्सा लें और काफिरों का सफाया कर दे। इन पुस्तकों में नौजवानों से अपील की गई है कि अगर वो जिहाद में हिस्सा लेते हुए शहीद होते हैं तो उनके लिए अल्लाह मियां ने जन्नत के दरवाजे खोले हुए हैं।

हामिद मीर के तालिबान के नेताओं से शुरू से ही बेहद घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। वह पहला पाकिस्तानी पत्रकार है, जिसे ओसामा बिन लादेन ने एक लम्बा इण्टरव्यू दिया था, जोकि पाकिस्तान के जियो टीवी नेटवर्क से प्रसारित किया गया था। मीर का कहना है कि आसीम उमर पाकिस्तान में किसी अज्ञात जगह पर छुपा हुआ, अपने जिहादी संगठन को सुदृढ़ कर रहा है। ओसामा बिन लादेन की मृत्यु के बाद तालिबान का कैडर विभिन्न गुटों में विभाजित हो गया था। अब मुल्ला उमर और आसीम उमर के प्रयासों से तालिबान जिहादी फिर एक मंच पर एकजुट हो गए हैं और उन्हें विदेशी सूत्रों से भारी मात्रा में अस्त्र–शस्त्र की मदद के साथ–साथ आर्थिक सहायता भी प्राप्त हो रही है।

मीर ने यह भी दावा किया है कि आसीम उमर मूलतः गुजरात का रहने वाला है। बाद में वह अपने परिवार सहित दिल्ली में रहा करता था। वहीं उसने दारुल–उलूम देवबन्द में चार वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद वह दुबई चला गया। इसके बाद वह पाकिस्तान पहुंचा और बाद में जिहाद में हिस्सा लेने के लिए अफगानिस्तान का रुख किया था। उसका दावा है कि आसीम उमर विवाहित व्यक्ति है। वह उस्ताद आसीम के नाम से जिहादियों में जाना जाता है।

समाचार–पत्रों में इस समाचार के छपने के बाद दारुल–उलूम देवबन्द में भारी बवाल मचा। इस संस्थान के प्रमुख मुफ्ती अब्बू कासिम ने यह दावा किया कि इस नाम का कोई छात्र दारुल–उलूम देवबन्द में नहीं पढ़ा। मगर इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि दारुल–उलूम देवबन्द और भारतीय मुसलमानों के प्रमुख संगठन जमीयते उलेमा के नेताओं के पाकिस्तानी तालिबानी लीडरों से गहरे रिश्ते हैं। पाकिस्तानी तालिबान के प्रमुख नेता मौलाना फजल उर रहमान दारुल–उलूम देवबन्द के चक्कर काटते रहे हैं। यह तालिबानी लीडर जब भी भारत में आता है उसे दारुल–उलूम देवबन्द के अपने अतिथि गृह में सम्मान के साथ ठहराया जाता है। जमीयते के अध्यक्ष मौलाना अरशद मदनी ने इस तालिबानी नेता को अनेक बार दिल्ली के पांच सितारा होटलों में दावत दे चुके हैं। यह बात दीगर है कि दार–उल–उलूम देवबन्द के प्रबन्धकों और जमीयते उलमा के नेताओं के द्वारा हमेशा यह सफाई दी जाती है कि उनका किसी भी उग्रवादी संगठन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

भारतीय गुप्तचर सूत्रों का दावा है कि अलकायदा के भारत और पाकिस्तान की शाखा के प्रमुख आसिफ उमर का सम्बन्ध पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसी क्षेत्र से है। गुप्तचर सूत्रों का अनुमान है कि असीम उमर दारुल–उलूम देवबन्द में शिक्षा प्राप्त करने के बाद जमाते इस्लामी के छात्र संगठन सिमी में शामिल हुआ था। इसके बाद वह भारत से दुबई चला गया और वहां से वह पाकिस्तान जा पहुंचा। 1990 में वह कराची स्थित एक मदरसा जामिया–उलूम–ए–इस्लामिया में छात्रों को इस्लाम के विभिन्न पक्षों की शिक्षा दिया करता था। वह इस मदरसे में शेख उल हदीस के पद पर नियुक्त था। इसी दौरान उसका सम्पर्क मौलाना मसूद अजहर से हुआ जो कि कुख्यात आतंकवादी है और आतंकवादी संगठन जैश–ए–मोहम्मद का प्रमुख है। इसके बाद आसिम उमर का हरकत उल जिहाद इस्लामी के प्रमुख कारी सैफ उल्लाह अख्तर और फजलुर्रमहान खलील के साथ भी असीम अब्दुल्ला पाकिस्तानी शहर गुजरांवाला में कुछ देर रहा। वहीं उसका सम्पर्क तालिबान के एक नेता निजामुद्दीन शम्स जई से हुआ। इसके बाद उमर ने आतंकवाद की राह पकड़ी और वह हरकतुल मुजाहिदीन में शामिल हो गया। गुरिल्ला युद्ध, बम बनाने आदि का प्रशिक्षण उसने पाक अधिकृत क्षेत्र बाग के एक शिविर में पाकिस्तानी सेनाधिकारियों से लिया। इसके बाद वह पेशावर चला गया। कहा जाता है कि वह 2004 से 2006 के बीच वहां हकानिया मदरसा का प्रमुख था। इस दौरान उसने इस्लामी जिहाद और विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में मुसलमानों पर हो रहे अत्याचारों के सम्बन्ध में अनेक भड़काऊ पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों को उमर ने उर्दू और पस्तो में लिखा था। इसी दौरान उसका सम्पर्क इस्लामाबाद स्थित लाल मस्जिद के मौलाना अब्दुल रशीद गाजी से हुआ और मोहम्मद इलियास कश्मीरी

उसे अलकायदा में ले आया। उसने अफगानिस्तान में तालिबान के उप–प्रमुख सालार के पद पर कुछ दिन तक कार्य किया। जब अमेरिका के सैनिकों ने तालिबान के खिलाफ अभियान शुरू किया तो उमर अफगानिस्तान से भागकर सउदी अरब चला गया। इन दिनों वह कहाँ रह रहा है, इसके बारे में कोई पुख्ता सूचना उपलब्ध नहीं है। गुप्तचर सूत्रों का अनुमान है कि आसिम उमर का ठिकाना पाक अधिकृत कश्मीर में है। यह भी कहा जाता है कि वह हर सप्ताह अपना ठिकाना बदल देता है ताकि उसके खिलाफ अमेरिका कोई कार्रवाई न कर सके।

ज्ञातव्य है कि ओसामा बिन लादेन के अतिरिक्त इलियास कश्मीरी भी अमेरिकी सैनिकों के हाथों मारा गया था।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई क्षेत्रों में उसके द्वारा लिखी हुई पुस्तकें भी बांटी जा रही हैं। ये पुस्तकें उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित की गई हैं। इन पुस्तकों पर उस छापाखाने का कोई उल्लेख नहीं किया गया है, जिसमें इन्हें छापा गया है। इन पुस्तकों में जिहाद को मुसलमानों के मजहबी कर्तव्यों में सबसे प्रमुख बताया गया है और इस बात पर जोर दिया गया है कि वह मुसलमानों के साथ हो रहे अन्याय के बदले के रूप में अब तलवार हाथ में लें। उस देश में पुनः इस्लाम की स्थापना करें, जिस पर उनके पूर्वज एक हजार वर्ष तक हुकूमत करते रहे हैं। उसकी एक पुस्तक का नाम है 'तीसरा विश्वयुद्ध और शैतान' इसमें मुल्ला असीम उमर ने भारत की वर्तमान सरकार को शैतानों की सरकार की संज्ञा दी है। उसकी अन्य पुस्तकों में भी ईजरायल, यहूदियों और अन्य काफिरों को निशाना बनाया गया है।

अलकायदा और नई खिलाफत के बीच जिस तरह से मतभेद बढ़ रहे हैं उसके कारण अब अलकायदा ने भी नई खिलाफत के खिलाफ मोर्चा खोल दिया है। अलकायदा ने अपने ट्वीट में लिखा है कि ईराक और सीरिया में जो हो रहा है उसे क्या इस्लाम इस बात की अनुमति देता है कि इंसानों को भेड़–बकरी की तरह जिबह किया जाए? क्या अबोध बच्चों और महिलाओं के उत्पीड़न की इस्लाम में लेशमात्र भी जगह है? अगर नहीं तो फिर इराक और सीरिया में खिलाफत के लोग जो कर रहे हैं वह क्या है? जब गाजा में फिलिस्तीनियों का खून ईजरायल बहाता है तो सारा इस्लामी विश्व चीख उठता है और जब ईराक में मुसलमानों के हाथ मुसलमान का खून बहता है तो फिर खामोशी क्यों? अलकायदा ने आरोप लगाया है कि नए खलीफा और उसके समर्थक वर्तमान युग के खार्जी हैं इसलिए उनको नेस्तनाबूद करना हर मुसलमान का मजहबी कर्तव्य है।

ज्ञातव्य है कि सातवीं शताब्दी में जब हजरत अली मुसलमानों के खलिफा थे तो उस समय कुछ लोगों ने उनका विरोध किया था। उन्हें खार्जी कहा जाता है। ये वे लोग थे जो इस्लाम के उसूलों का कट्टरता से पालन करना चाहते थे। उनकी नजर में उनको छोड़कर सभी अन्य लोग इस्लाम के दुश्मन थे। इसलिए इन खार्जियों की नजर में ऐसे लोगों की हत्या जायज थी। इस्लामिक इतिहास में खार्जियों और अली के समर्थकों के बीच हुई जंग का उल्लेख जंग सफीन में मिलता है। इस जंग में दोनों ओर मुसलमानों के ही दो गिरोह थे। एक गिरोह का नेतृत्व हजरत अली कर रहे थे जबकि दूसरे के नेता अमीर माविया थे। इस युद्ध का खात्मा आपसी समझौते के तहत हुआ। जब हजरत अली कुफा की ओर लौट रहे थे तो उनकी सेना में दो गिरोह बन गए। एक गिरोह की नजर में वे खलीफा थे इसलिए उनका निर्णय सरासर जायज था। जबकि दूसरे गिरोह ने उनका विरोध करना शुरू किया और वे उनसे पृथक हो गए। उनका कहना था कि अब इस्लाम का कोई खलीफा नहीं है। इसी गिरोह को बाद में खार्जी का नाम दिया गया। इन खार्जियों ने कई मुसलमानों को काफिर करार देकर उनकी हत्या कर दी। इन खार्जियों ने यह फैसला किया कि तीन लोगों का कत्ल किया जाए जो कि उनकी नजर में कट्टरपन्थी मुसलमान नहीं थे। जिन लोगों की हत्या का फैसला हुआ उनमें खलीफा हजरत अली, दूसरे अमीर माविया और तीसरे मिस्र के गवर्नर उमरू बिन इल्यिास थे। इन लोगों ने नमाज पढ़ते हुए हजरत अली की हत्या कर दी, जबकि अमीर माविया घायल हुए। जबकि उमरू बिन इलियास इसलिए बच गए क्योंकि वे इस नमाज में शामिल नहीं हुए थे। अलकायदा का कहना है कि नए तथाकथित खलीफा इब्राहिम अल बगदादी मुसलमान नहीं हैं। इसलिए हर मुसलमान का यह फर्ज है कि वह इनको जहां भी पाएं उनका कत्ल कर दें।

अलकायदा के इस फतवे के बाद नए खलीफा के समर्थकों के साथ उनकी ओर से खुली जंग छिड़ने की सम्भावना काफी बढ़ गई है। दोनों के समर्थक मुफ्ती इन्हें इस्लाम का दुश्मन करार देकर उनकी हत्या करना मुसलमानों का पहला मजहबी कर्तव्य बता रहे हैं। अगर अलकायदा और नए खलीफा के समर्थकों के बीच कोई खूनी युद्ध हुआ तो वह इस्लाम के लिए घातक सिद्ध होगा। इस्लाम से ज्यादा इन्हें अपने–अपने वर्चस्व की चिन्ता है। अलकायदा के हत्यारे हों या नई खिलाफत दोनों के ही हाथ निर्दोषों के खून से रंगे हुए हैं। नई खिलाफत के आदेश से तीन निर्दोष पत्रकारों की सार्वजनिक रूप से जो हत्या की गई है, उसके बाद अमेरिका सहित सभी की नजर में ये इस्लामी उग्रवादी मानवता के शत्रु बन गए हैं। अमेरिका ने इस कथित नई खिलाफत के उन्मूलन के लिए 20 अन्य देशों के सहयोग से युद्ध अभियान शुरू करने की घोषणा की है।

पाकिस्तान में भी इस नए उग्रवादी संगठन ने अपने कदम जमाने शुरू कर दिए हैं। कराची में दीवारों पर दौलत इस्लामिया ईराक और सीरिया (दसक) जिन्दाबाद के नारे लिखे हैं और स्वयं–भू खलीफा अब्बू बकर अल बगदादी से अनुरोध किया है कि वह अपने लश्कर (सेना) को लेकर भारत को काफिरों की गुलामी से आजाद करवायें। इससे पूर्व पाकिस्तान के कई आतंकवादी संगठन जिनमें तहरीक–ए–तालिबान, जन्द अल्लाह, लश्कर जंगवी खुलेआम इस नए उग्रवादी इस्लामी संगठन का समर्थन करने की घोषणा कर चुके हैं।

अंग्रेजी समाचार–पत्र *हिन्दुस्तान टाइम्स* (30 अक्टूबर, 2014) ने अपने मुख्य पृष्ठ पर एक समाचार प्रकाशित किया है जिसमें कहा गया है कि अलकायदा ने एक पैम्फलेट बंगाली में जारी किया है, जिसमें बांग्लादेश में नई इस्लामी खिलाफत स्थापित करने की घोषणा की है। इसमें पूर्वी भारत और पूर्वोत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों को शामिल किया गया है। यह पैम्फलेट बांग्ला भाषा में लिखा गया है और इसे गुप्त रूप से असम और बंगाल में वितरित किया जा रहा है। इस पैम्फलेट में कहा गया है कि हम बांग्लादेश में एक नई खिलाफत स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें असम, बंगाल और बिहार एवं झारखण्ड के अतिरिक्त अरकान (म्यांमार) भी शामिल होगा। भारत के साथ पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में हम केन्द्रीय सरकार के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह की ज्वाला भड़कायेंगे। यह भारत के हिन्दुओं पर करारी चोट होगी। गुप्तचर सूत्रों ने यह दावा किया है कि इस पैम्फलेट को केन्द्र सरकार के पास भेजा गया है। कहा जाता है कि यह पैम्फलेट बांग्लादेश से गुप्त रूप से अक्टूबर माह की शुरुआत में लाया गया है। इस पैम्फलेट में यह दावा किया गया है कि झारखण्ड, बिहार, असम, बंगाल, त्रिपुरा, मणिपुर आदि में मुस्लिम आतंकवादी संगठन जमायत–उल–मुजाहिद्दीन बांग्लादेश की शाखायें स्थापित की जा चुकी हैं। हाल में ही अलकायदा के नए संगठन कियादत अल जिहाद ने एक अंग्रेजी साप्ताहिक *रिसर्जनस्* जारी किया है। एक अन्य समाचार के अनुसार असम के मुख्यमन्त्री तरूण गोगोई ने केन्द्रीय गृहमन्त्री राजनाथ सिंह से मुलाकात करके इस बात से अवगत कराया है कि अलकायदा असम में अपनी शाखायें स्थापित कर चुकी हैं। अंग्रेजी समाचार–पत्र *हिन्दुस्तान टाइम्स* के एक अन्य समाचार के अनुसार मुस्लिम संगठन ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक फ्रण्ट असम पूर्वोत्तर भारत में जिहादी गतिविधियों को प्रोत्साहन दे रहा है। इस संगठन की ओर से असम से मुसलमान युवकों को बांग्लादेश भेजा जा रहा है ताकि वे वहां जाकर इस्लामी उग्रवादी संगठनों द्वारा चलाए जा रहे गुप्त प्रशिक्षण शिविरों में छापामार युद्ध का प्रशिक्षण प्राप्त करें। इस कार्य में मुसलमानों का एक अन्य संगठन जमीयते–उलेमा भी सहयोग दे रहा है। भाजपा और बजरंग दल ने इस बात की मांग की है कि सरकार असम से छापामार

युद्ध प्रशिक्षण के लिए बांग्लादेश भेजे जा रहे युवकों के सम्बन्ध में उच्च स्तरीय जांच करवाएं।

संदर्भ सूची

1. द इंडियन एक्सप्रेस, 5 सितंबर, 2014।
2. मेल टुडे, 2 अक्टूबर, 2014।
3. मेल टुडे, 13 अगस्त, 2014।
4. द इंडियन एक्सप्रेस, 16 सितंबर, 2014।
5. चौथी दुनिया, सितम्बर, 2014।
6. मेल टुडे, 26 सितंबर, 2014।
7. मेल टुडे, 16 दिसंबर, 2014।
8. मेल टुडे, 7 जनवरी, 2015।

3rd Cover
Blank

अमेरिका से निकलने वाले समाचारों के अनुसार वहां की सरकार का अनुमान है कि आई.एस.आई.एस. को नष्ट करने के लिए तीन वर्ष लग सकते हैं। इस निश्चयात्मकता का आधार अभी स्पष्ट नहीं हो पाया है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि इस प्रकार की बयानबाजी से विश्व पर अपना वर्चस्व स्थापित करने और 'दूसरों' के संहार के लिए कटिबद्ध पैन–इस्लामी ताकतों का मनोबल बढ़ेगा अथवा उसके शिकार हो रहे लोगों को राहत मिलेगी। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि हाल के घटनाक्रमों ने पूरे विश्व में आशंकाएं फैला दी है। राष्ट्रपति ओबामा के इस वक्तव्य, कि अमेरिका आई.एस.आई.एस. का 'क्षय कर उसका विनाश करेगा' की विश्वसनीयता अभी अनिश्चित बनी हुई है क्योंकि इस्लामी आतंकवादी विचारधारा और उसके तन्त्र को लेकर अमेरिका की नीति का अभी ठीक से पता नहीं है। आई.एस.आई.एस. को लेकर अमेरिका के रवैये के प्रति विश्व का अविश्वास कायम है। विश्व मामलों में अब आदर्शवादियों के लिए कोई स्थान नहीं है।

INDIA POLICY FOUNDATION
॥ प्रदीपयेम जगत् सर्वम् ॥

भारत नीति प्रतिष्ठान
डी-51, प्रथम तल, हौजखास, नई दिल्ली-110016
दूरभाष : +91-11-26524018 फैक्स : +91-11-46089365
ई-मेल : indiapolicy@gmail.com
वेबसाइट : www.indiapolicyfoundation.org

ISBN : 978-93-84835-03-3

मूल्य : 150 रुपये मात्र